शब्द ब्रह्म - नाद ब्रह्म

— श्रीराम शर्मा आचार्य

शब्द-ब्रह्म—नाद-ब्रह्म

▼

लेखक

वेदमूर्ति तपोनिष्ठ पं० श्रीराम शर्मा आचार्य

▼

प्रकाशक :

युग निर्माण योजना विस्तार ट्रस्ट

गायत्री तपोभूमि, मथुरा

फोन : (०५६५) २५३०१२८, २५३०३९९

मो. ०९९२७०८६२८७, ०९९२७०८६२८९

फैक्स नं०- २५३०२००

पुनरावृत्ति सन् **२०११** मूल्य : २१.०० रुपये

विषय-सूची

विषय	पृष्ठ
१. स्वर से 'अक्षर' की अनुभूति	३
२. संगीत एक महाशक्ति	११
३. संगीत द्वारा संवेदना-संचार	१७
४. संगीत का प्रबल प्रभाव	२३
५. संगीत की रोग-निरोधक शक्ति	२६
६. संगीत की जीवनदायी क्षमता	३६
७. पशु-पक्षी और पौधों का संगीत-प्रेम	४५
८. संगीत कलाविहीनः साक्षात् पशु पुच्छहीनः	५०
६. शब्द ब्रह्म और उसकी नाद साधना	५३
१०. शब्द ब्रह्म—नाद ब्रह्म	५५
११ नाद-योग का दिव्य सत्ता के साथ आदान-प्रदान	६६
१२. संगीत के दुरुपयोग की निंदा-भर्त्सना	१०२

अदृश्य-जगत् की सूक्ष्म कार्य प्रणाली पर जिधर भी हम दृष्टि डालते हैं, उधर ही यह प्रतीत होता है कि एक दिव्य संगीत से दशों-दिशाएँ झंकृत हो रही हैं, हर तरफ स्वर-लहरी गूँज रही है। हृषीकेश का पांचजन्य, शंकर का डमरू, भगवान् कृष्ण की मधुर मुरली, सरस्वती की वीणा का सत्य, शिव और सुंदर संगीत निनादित हो रहा है और उसकी स्वर लहरी पर विमुग्ध होकर विश्व की जड़-चैतन्य सत्ता का प्रत्येक परमाणु नृत्य कर रहा है। प्रकृति और पुरुष की रासलीला का यह नृत्य-वाद्य कितना सुंदर, कितना मोहक और कितना मादक है ! इसे कोई योगी साधक ही समझ सकता है।

स्वर से 'अक्षर' की अनुभूति

▼

पुराणों में एक आख्यायिका आती है। देवर्षि नारद ने एक बार लंबे समय तक यह जानने के लिए प्रव्रज्या की कि सृष्टि में आध्यात्मिक विकास की गति किस तरह चल रही है ? वे जहाँ भी गए, प्रायः प्रत्येक स्थान में लोगों ने एक ही शिकायत की—भगवन् ! परमात्मा की प्राप्ति अति कठिन है। कोई सरल उपाय बताइये, जिससे उसे प्राप्त करने, उसकी अनुभूति में अधिक कष्ट-साध्य-तितीक्षा का सामना न करना पड़ता हो। नारद ने इस प्रश्न का उत्तर स्वयं भगवान् से पूछकर देने का आश्वासन दिया और स्वर्ग के लिए चल पड़े।

आपको ढूँढ़ने में तप-साधना की प्रणालियाँ बहुत कष्टसाध्य हैं, भगवन् ! नारद ने वहाँ पहुँचकर विष्णु भगवान् से प्रश्न किया—ऐसा कोई सरल उपाय बताइए, जिससे भक्तगण सहज ही में आपकी अनुभूति कर लिया करें ?

नाहं वसामि वैकुण्ठे योगिनां हृदये न वा।
मद्भक्ताः यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद।।

—नारद संहिता

हे नारद ! न तो मैं वैकुंठ में रहता हूँ और न योगियों के हृदय में, मैं तो वहाँ निवास करता हूँ, जहाँ मेरे भक्त-जन कीर्तन करते हैं, अर्थात् संगीतमय भजनों के द्वारा ईश्वर को सरलतापूर्वक प्राप्त किया जा सकता है।

इन पंक्तियों को पढ़ने से संगीत की महत्ता और भारतीय इतिहास का वह समय याद आ जाता है, जब यहाँ गाँव-गाँव प्रेरक मनोरंजन के रूप में संगीत का प्रयोग बहुलता से होता था। संगीत में केवल गाना या बजाना ही सम्मिलित नहीं था, नृत्य भी इसी कला का अंग था। कथा, कीर्तन, लोक-गायन और विभिन्न धार्मिक एवं सामाजिक पर्व-त्यौहार एवं उत्सवों पर अन्य कार्यक्रमों के साथ

संगीत अनिवार्य रूप से जुड़ा रहता था। उससे व्यक्ति और समाज दोनों के जीवन में शांति और प्रसन्नता, उल्लास और क्रियाशीलता का अभाव नहीं होने पाता था।

अक्षर परब्रह्म परमात्मा की अनुभूति के लिए वस्तुतः संगीत साधना से बढ़कर अन्य कोई अच्छा माध्यम नहीं, यही कारण रहा है कि— यहाँ की उपासना पद्धतियों से लेकर कर्मकांड तक में सर्वत्र "स्वर" संयोजन अनिवार्य रहा है। मंत्र भी वस्तुतः छंद ही है। वेदों की प्रत्येक ऋचा का कोई ऋषि, कोई देवता तो होता ही है, उसका कोई न कोई छंद जैसे त्र्युष्टुप, अनुष्टुप, गायत्री आदि भी होते हैं। इसका अर्थ ही होता है कि उस मंत्र के उच्चारण की ताल, लय और गतियाँ भी निर्धारित हैं। अमुक फ्रीक्वेन्सी पर बजाने से ही अमुक स्टेशन बोलेगा, उसी तरह अमुक गति, लय और ताल के उच्चारण से ही मंत्र सिद्धि होगी—यह उसका विज्ञान है।

कोलाहल और समस्याओं से घनीभूत संसार में यदि परमात्मा का कोई उत्तम वरदान मनुष्य को मिला है, तो वह संगीत ही है। संगीत से पीडित हृदय को शांति और संतोष मिलता है। संगीत से मनुष्य की सृजन-शक्ति का विकास और आत्मिक प्रफुल्लता मिलती है। जन्म से लेकर मृत्यु तक, शादी-विवाहोत्सव से लेकर धार्मिक समारोह तक के लिए उपयुक्त संगीत-निधि देकर परमात्मा ने मनुष्य की पीड़ा को कम किया, मानवीय गुणों से प्रेम और प्रसन्नता को बढ़ाया।

शास्त्रकार कहते हैं—

"स्वरेण संल्लीयते योगी"

"स्वर साधना द्वारा योगी अपने को तल्लीन करते हैं" और एकाग्र की हुई, मनःशक्ति को विद्याध्ययन से लेकर किसी भी व्यवसाय में लगाकर चमत्कारिक सफलताएँ प्राप्त की जा सकती हैं, इसलिए वह मानना पड़ेगा कि संगीत दो वर्ष के बच्चे से लेकर विद्यार्थी, व्यवसायी, किसान, मजदूर, स्त्री-पुरुष सबको उपयोगी ही नहीं आवश्यक भी है। उससे मनुष्य की क्रियाशक्ति बढ़ती और

आत्मिक आनंद की अनुभूति होती है। यह बात ऋषि-मनीषियों ने बहुत पहले अनुभव की थी और कहा था—

"अभि स्वरन्ति बहवो मनीषिणो राजानमस्य भुवनस्य निंसते।"
—ऋग्वेद ६।८५।३

अर्थात्—अनेक मनीषी विश्व के महाराजाधिराज भगवान् की ओर संगीतमय स्वर लगाते हैं और उसी के द्वारा उसे प्राप्त करते हैं।

एक अन्य मंत्र में बताया है कि ईश्वर प्राप्ति के लिए ज्ञान और कर्मयोग मनुष्य के लिए कठिन है। भक्ति-भावनाओं से हृदय में उत्पन्न हुई अखिल-करुणा ही वह सर्व सरल मार्ग है, जिससे मनुष्य बहुत शीघ्र परमात्मा की अनुभूति कर सकता है और उस प्रयोजन में भक्ति-भावनाओं के विकास में संगीत का योगदान असाधारण है—

स्वरन्ति त्वा सुते नरो वसो निरेक उक्थिनः।
—ऋग्वेद ८।३३।२

हे शिष्य ! तुम अपने आत्मिक उत्थान की इच्छा से मेरे पास आये हो। मैं तुम्हें ईश्वर का उपदेश करता हूँ, तुम उसे प्राप्त करने के लिए संगीत के साथ उसे पुकारोगे तो वह तुम्हारी हृदय गुहा में प्रकट होकर अपना प्यार प्रदान करेगा।

पौराणिक उपाख्यान है कि ब्रह्मा जी के हृदय में उल्लास जागृत हुआ तो वह गाने लगे। उसी अवस्था में उनके मुख से गायत्री छंद प्रादुर्भूत हुआ—

गायत्री मुखादुदपतदिति च ब्राह्मणम्।
—निरुक्त ७। १२

गान करते समय ब्रह्मा जी के मुख से निकलने के कारण गायत्री नाम पड़ा।

संगीत के अदृश्य प्रभाव को खोजते हुए भारतीय योगियों को वह सिद्धियाँ और अध्यात्म का विशाल क्षेत्र उपलब्ध हुआ, जिसे वर्णन करने के लिए एक पृथक् वेद की रचना करनी पड़ी। सामवेद

में भगवान् की संगीत शक्ति के ऐसे रहस्य प्रतिपादित और पिरोये हुए हैं, जिनका अवगाहन कर मनुष्य अपनी आत्मिक शक्तियों को, कितनी ही तुच्छ हों—भगवान् से मिला सकता है। अब इस संबंध में पाश्चात्य विद्वानों की मान्यताएँ भी भारतीय दर्शन की पुष्टि करने लगी हैं।

विदेशों में विज्ञान की तरह ही एक शाखा विधिवत् संगीत का अनुसंधान कर रही है और अब तक जो निष्कर्ष निकले हैं, वह मनुष्य को इस बात की प्रबल प्रेरणा देते हैं कि यदि मानवीय गुणों और आत्मिक आनंद को जीवित रखना है, तो मनुष्य अपने आपको संगीत से जोड़े रहे। संगीत की तुलना प्रेम से की गई है। दोनों ही समान उत्पादक शक्तियाँ हैं, इन दोनों का ही प्रकृति (जड़-तत्त्व) और जीवन (चेतन-तत्त्व) दोनों पर ही चमत्कारिक प्रभाव पड़ता है।

"संगीत आत्मा की उन्नति का सबसे अच्छा उपाय है, इसलिए हमेशा वाद्य-यंत्र के साथ गाना चाहिये।" यह पाइथागोरस की मान्यता थी; पर डॉ० मैकफेडेन ने वाद्य की अपेक्षा गायन को ज्यादा लाभकारी बताया है। मानसिक प्रसन्नता की दृष्टि से पाइथागोरस की बात अधिक सही लगती है। मैकफेडेन ने लगता है, केवल शारीरिक स्वास्थ्य को ध्यान में रखकर ऐसा लिखा है। इससे भी आगे की कक्षा आत्मिक है, उस संबंध में कविवर रवींद्रनाथ टैगोर का कथन उल्लेखनीय है। श्री टैगोर के शब्दों में—"स्वर्गीय सौंदर्य का कोई साकार रूप और सजीव प्रदर्शन है, तो उसे संगीत ही होना चाहिये।" रस्किन ने संगीत को आत्मा के उत्थान, चरित्र की दृढ़ता, कला और सुरुचि के विकास का महत्त्वपूर्ण साधन माना है।

विभिन्न प्रकार की सम्मतियाँ वस्तुतः अपनी-अपनी तरह की विशेष अनुभूतियाँ हैं, अन्यथा संगीत में शरीर, मन और आत्मा तीनों को बलवान् बनाने वाले तत्त्व परिपूर्ण मात्रा में विद्यमान हैं, इसी कारण भारतीय आचार्यों और मनीषियों ने संगीत शास्त्र पर सर्वाधिक जोर दिया। 'साम' वेद की स्वतंत्र रचना उसका प्रमाण है। **समस्त स्वर—** ताल, लय, छंद, गति, मंत्र, स्वर-चिकित्सा, राग,

नृत्य, मुद्रा, भाव आदि 'साम' वेद से ही निकले हैं। किसी समय इस दिशा में भी भारतीयों ने योग-सिद्धि प्राप्त करके, यह दिखा दिया था कि स्वर-साधना के समकक्ष संसार की कोई और दूसरी शक्ति नहीं। उसके चमत्कारिक प्रयोग भी सैकड़ों बार हुए हैं।

अकबर की राज्य-सभा में संगीत प्रतियोगिता रखी गई। प्रमुख प्रतिद्वंद्वी थे तानसेन और बैजूबावरा। यह आयोजन आगरे के पास वन में किया गया। तानसेन ने 'टोड़ी' राग गाया और कहा जाता है कि उसकी स्वर लहरियाँ जैसे ही वन-खंड में गुंजित हुईं, मृगों का एक झुंड वहाँ दौड़ता हुआ चला आया। भाव-विभोर तानसेन ने अपने गले पड़ी माला एक हरिण के गले में डाल दी। इस क्रिया से संगीत-प्रवाह रुक गया और तभी सब-के-सब सम्मोहित हरिण जंगल में भाग गये।

टोड़ी राग गाकर तानसेन ने यह सिद्ध कर दिया कि संगीत मनुष्यों की ही नहीं, प्राणिमात्र की आत्मिक-प्यास है, उसे सभी लोग पसंद करते हैं। इसके बाद बैजूबावरा ने 'मृग-रंजनी टोड़ी' राग का अलाप किया। तब केवल एक वह मृग दौड़ता हुआ राज्य-सभा में आ गया, जिसे तानसेन ने माला पहनाई थी। इस प्रयोग से बैजूबावरा ने यह सिद्ध कर दिया कि शब्द के सूक्ष्मतम कंपनों में कुछ ऐसी शक्ति और सम्मोहन भरा पड़ा है कि उससे किसी भी दिशा के कितनी ही दूरस्थ किसी भी प्राणी तक अपना संदेश भेजा जा सकता है।

इसी बैजूबावरा ने अपने गुरु हरिदास की आज्ञा से चंदेरी, गुना (म. प्र.) के निवासी नरवर के कछवाह राजा राजसिंह को 'राग पूरिया' सुनाया था और उन्हें अनिद्रा रोग से बचाया था। 'दीपक राग' का उपयोग बुझे हुए दीपक जला देने, 'श्री राग' का क्षय रोग निवारण में, 'भैरवी राग' प्रजा की सुख-शांति वर्द्धन में, 'शकरा राग' द्वारा युद्ध के लिए प्रस्थान करने वाले सैनिकों में अजस्र शौर्य भर देने में आदिकाल से उपयोग होता रहा है। वर्षा ऋतु में गाँव-गाँव मेघ व मल्हार राग गाया जाता था, उससे दुष्ट से दुष्ट लोगों में भी प्रेम-उल्लास और आनंद का झरना प्रवाहित होने लगता था। स्वर

और लय की गति में बँधे भारतीय जीवन की सौमनस्यता जो तब थी, अब वह कल्पना मात्र रह गई है। सस्ते सिनेमा-संगीत ने उन महान् शास्त्रीय उपलब्धियों को एक तरह से नष्ट करके रख दिया है।

संगीत एक प्रकार की योग साधना है, उसमें ध्वनि-कंपन नाभि-प्रदेश से निकालकर ब्रह्म-रंध्र में लाए जाते हैं, यहाँ तालु से उन्हें पकड़कर मनोमय विद्युत् का संयोग दिया जाता है, तब वह मुख द्वारा बाहर निकलता है। इस तरह नियंत्रित स्वर पानी में भ्रमर अथवा गोलाकार चक्र के रूप में निकलता है, फिर उसका प्रयोग इच्छानुसार किसी भी प्रयोजन में हो सकता है। हर प्रयोजन के लिए अलग-अलग राग खोजे गये हैं, जो मंत्रवत् काम करते हैं। तंत्र में तो एक बुराई यह होती है कि, यदि उसकी प्रतिक्रिया जो एक तेज झटके की तरह होती है, सहन न हो तो प्रयोगकर्ता का अनिष्ट भी कर सकती है; पर इन प्रयोगों से गायत्री उपासना, गीता के पाठ, गाय के दूध और गायत्री मंत्र के जप के समान किसी भी अवस्था में हानि की कोई भी आशंका नहीं रहती। संगीत के अभ्यास से इसीलिए कभी किसी को हानि नहीं होती, किसी भी अवस्था में लाभ ही होता है।

ऊपर दी हुई घटनाएँ तो बहुत दिनों पूर्व की हैं, अभी कुछ दिन पूर्व ही होशियारपुर (पंजाब) जिले के प्रसिद्ध संगीतज्ञ श्री पं० गुज्जरराम वासुदेव जी रागी का चिंतापूर्णी देवी के पर्वत शिखर पर गायन हुआ। भगवती चिंतापूर्णी की भक्ति में विह्वल होकर श्री रागी जी ने मेघ राग का आलाप किया। इस समय तक आकाश में बादलों की चित्ती तक न थी। कड़ाके की धूप पड़ रही थी, पर जैसे ही उन्होंने 'मेघ राग' गाना प्रारंभ किया, आकाश में बादल छाने लगे। थोड़ी ही देर में सूर्य बादलों से ढँक गया और घन गरज के साथ वृष्टि प्रारंभ हो गई। लोगों ने अनुभव किया कि शास्त्रीय संगीत स्वर-विज्ञान के उन रहस्यों से ओत-प्रोत है, जो, प्राकृतिक परमाणुओं में भयंकर हलचल उत्पन्न करके उनसे इच्छित कार्य करा सकते हैं।

रामपुर के नवाब साहब लकवे से बीमार थे। उस्ताद सूरज खाँ के कहने से उन्हें भारतीय संगीत पर श्रद्धा जम गई। सूरजखाँ सिद्ध वीणावादक थे। उन्होंने राग 'जैजैवंती' के प्रयोग से लकवे से पीड़ित नवाब साहब को कुछ ही दिन में अच्छा कर दिया।

अपनी ही संस्कृति की यह महान् उपलब्धियाँ आज हमारे ही लिए किंवदंतियाँ बन गईं। हम उन पर विश्वास नहीं करते या हमारी उन पर श्रद्धा नहीं रही। ऐसा न होता तो सिनेमाओं में प्रयुक्त सस्ते संगीत की अपेक्षा शास्त्रीय संगीत को महत्त्व दिया जाता। कुछ ऐसे प्रभावशील और साधनसंपन्न व्यक्ति भी निकलते, जो संगीतकला को अक्षुण्ण बनाए रखने के लिए अपने साधनों एवं प्रभाव का उपयोग स्थान-स्थान पर शास्त्रीय-संगीत केंद्र खोलने, बालक-बालिकाओं को उनमें प्रशिक्षण लेने के लिए प्रोत्साहित करने में करते और नहीं तो कम-से-कम कीर्तन और भजन-मंडलियाँ और सर्वसुलभ, गुण प्रेरक नौटंकियाँ तो गाँव-गाँव स्थापित होनी ही चाहिए, ताकि हमारा लोक-जीवन नीरस और आत्मिक सौंदर्य से रहित न होने पाए।

किसी समय नृत्य भारतीय जीवन का एक महत्त्वपूर्ण अंग था। भगवान् शंकर 'नटराज' कहे जाते हैं; वे स्वयं नृत्य विशेषज्ञ थे। नृत्यरास, मणिपुर, कत्थक कली, भारत-नाट्यम आदि नृत्य और नृत्य-नाटिकाओं का आज भी अपना विशिष्ट महत्त्व है, पर गाँव-गाँव रचे जाने वाले लोक-नृत्यों का अपना महत्त्व था। पं० जवाहरलाल नेहरू ऐसे नृत्य देखकर थिरक उठते थे। वह कहते थे—'लोक-नृत्यों से हमें उल्लास मिलता है और यह शिक्षा मिलती है कि जीवन का आनंद केवल भौतिक पदार्थों की उपलब्धि में ही नहीं है, तो भी यह कलाएँ हमारे लोक-जीवन से हटती जा रही हैं। हमें इन्हें फिर से अपनाना चाहिए। प्रत्येक व्यक्ति को कुछ-न-कुछ गाना, कुछ-न-कुछ बजाना और नृत्य करना सीखना चाहिए, उससे लोक-जीवन में प्रसन्नता, प्रफुल्लता, आनंद और उल्लास का ही विकास होगा।

खेद की बात है कि जो भारतवर्ष कभी संगीत-कला-विशेषज्ञ माना जाता था, आज वह तो अपनी इस विशेषता से रिक्त होता जा रहा है, जबकि दूसरे देशों में उसकी प्रतिष्ठा बढ़ रही है। लोग उससे बहुमूल्य लाभ ले रहे हैं।

अमर कहानीकार मुंशी प्रेमचंद ने इसी तथ्य को व्यक्त करते हुए लिखा है—"मनोव्यथा जब असह्य हो जाती है और अपार हो जाती है, जब उसे कहीं त्राण नहीं मिलता, जब वह रुदन और क्रंदन की गोद में भी आश्रय नहीं पाती, तो वह संगीत के चरणों में जा गिरती है।"

संगीत मनुष्य की आत्मा है, उसे अपने जीवन से अभिन्न न करें तो आत्मोत्थान के स्वर्गीय सुख से भी हम कभी वंचित न हों। शास्त्रों में शब्द और नाद को ब्रह्म कहा है। निःसंदेह स्वर साधना एक दिन अक्षर ब्रह्म तक पहुँचा देती है।

❑ ❑

संगीत एक महाशक्ति

▼

प्राचीनकाल में समीपवर्ती तीर्थ-यात्राओं देव-दर्शनों और मेलों पर गाते हुए जाने की प्रथा थी। अभी भी गीत गाते हुए परिक्रमा आदि देने की प्रथा है। मथुरा यात्रा पर आने वाले कुछ बुंदेलखंडी तीर्थ यात्री 'बिरहे' गाते हुए और शिव उपासक 'भोला तेरी बम' गाते हुए निकलते हैं, उनका कहना है कि गीतों के माध्यम से वे यहाँ की धार्मिक भावनाएँ खींच ले जाते हैं। तीर्थ यात्राओं और पर्व-त्योहारों पर गाँव-गाँव संगीत और भजनों का प्रचलन था, उससे एक बार तमाम भारतवर्ष संगीत से मुखरित हो उठता था, उसी का फल था कि वृक्ष-वनस्पति अधिक और मीठे फल देते थे। दूषित तत्त्वों का संहार होता था और उससे बीमारियाँ आदि कम फैलती थी।

गीत से जो उल्लास पैदा होता था, वह गंदे स्थानों से गुजरने पर भी वहाँ की प्रतिक्रिया रोक देता था और संगीत के प्रभाव से यात्री स्वस्थ और प्रसन्नचित्त लौट आता था, उस पर किसी प्रकार की बीमारी का असर नहीं होता था। आज गाने का शौक कम होता जा रहा है, उसी कारण लोग तरह-तरह के दुर्गुणों में ग्रस्त होते, स्वास्थ्य खोते चले जा रहे हैं। संगीत जैसी उत्पादक सत्ता से संबंध विच्छेद कर मनुष्य जाति ने अपनी ही हानि की है।

सामूहिक संगीत के महत्त्व पर डॉक्टरों का मत है कि—जब कई व्यक्ति एक साथ गाते हैं तो सब लोगों का स्वर-प्रवाह एवं आंतरिक उल्लास मिलकर एक ऐसी तरंग शृंखला उत्पन्न करता है, जो वातावरण में मिलकर सबको उल्लसित कर देती है। फाल्गुन के महीने में फाग की धूम होती है, तब बच्चे-बूढ़ों में भी उल्लास फूट पड़ता है और वे युवकों की तरह उत्फुल्ल दिखाई देने लगते हैं। सामूहिक गायनों में सभी को अपने प्रयत्न से अधिक ही लाभ मिलता है और वह लाभ इतने व्यापक क्षेत्र को प्रभावित करता है कि प्रत्येक श्रोता चाहे वह गाने में भाग न भी ले रहा हो, उस आनंद सरोवर में डूब जाता है।

गाने की धुनों के साथ हाथ-पाँव अनायास ही गति करने लगते हैं, इसका तात्पर्य ही यह है कि संगीत का मनुष्य-जीवन और आत्मा से सीधा संबंध है। आत्मा उसके बिना कुंठित हो जाती है, इसलिए आत्मिक प्रगति के प्रत्येक इच्छुक को गाने और संगीत सुनने का लाभ अवश्य लेना चाहिए।

योगशास्त्रों में संगीत की बड़ी चर्चा है। तत्त्ववेत्ताओं का कथन है कि अदृश्य जगत् की सूक्ष्म कार्य प्रणाली पर जिधर भी दृष्टि डालते हैं, उधर ही यह प्रतीत होता है कि एक दिव्य संगीत से सभी दिशाएँ और विश्व भुवन झंकृत हो रहा है। यह स्वर लहरियाँ वीणा, भ्रमर, झरना, नागरी भेरी, वंशी आदि की तरह सुनाई देती हैं। जिस तरह सर्प नाद को सुनकर मस्त हो जाता है, उसी तरह चित्त उन स्वर लहरियों में आसक्त होकर सभी प्रकार की चपलताएँ भूल जाता है। नाद से संलग्न होने पर मन ज्योतिर्मय हो जाता है और जो स्थिति कठिन साधनाओं से भी कठिनाई से मिलती है, वह स्वर योग के साधक को अनायास ही मिल जाती है।

संगीत परमात्मा के आशीर्वाद रूप में मनुष्य को मिला है, उस आशीर्वाद की वर्षा अपने ऊपर आप की जा सकती है। धन-संपत्ति न मिले न सही; पर संगीत का आनंद तो वायु, जल, सूर्य की ऊष्मा की तरह उन्मुक्त रूप से हर कोई प्राप्त कर सकता है। इस महाशक्ति से संबंध जोड़कर, प्रत्येक व्यक्ति को अपने गुणों और आत्मिक संपदा का विकास और दूषित तत्त्वों से देह, मन और आत्मा की रक्षा करनी चाहिए।

विश्व के यशस्वी गायक एनरिको कारूसो लिखते हैं—"जब कभी संगीत की स्वर लहरियाँ मेरे कानों में गूँजती, मुझे ऐसा लगता कि, मेरी आत्म-चेतना किसी अदृश्य जीवनदायिनी सत्ता से संबद्ध हो गई है। मैं शरीर की पीड़ा भूल जाता, भूख-प्यास और निद्रा टूट जाती, मन को विश्राम और शरीर को हल्कापन मिलता। मैं तभी से सोचा करता था कि सृष्टि में संगीत से बढ़कर मानव-जाति के लिए और कोई दूसरा वरदान नहीं है।"

कारूसो ने जीवन भर संगीत की साधना की। जबकि एक बार एक शिक्षक ने यहाँ तक कह दिया कि, तुम्हारा स्वर संगीत के योग्य है ही नहीं। तुम्हारा स्वर खड़खड़ाता है, पर निरंतर अभ्यास और साधना से कारूसो ने संगीत-साधना में अभूतपूर्व सिद्धियाँ पाई और यह प्रमाणित कर दिया कि संगीत का संबंध स्वर से नहीं हृदय और भावनाओं से है। कोई भी मनुष्य अपने हृदय को जागृत कर परमात्मा के इस वरदान से विभूषित हो सकता है।

संगीत से मनुष्य का आध्यात्मिक विकास होता है और वह सूक्ष्म सत्ता के भाव-संस्पर्श और अनुभूति की स्थिति पाता है। यह परिणाम अंतर्जगत् से संबंध रखते हैं, इसलिए उस संबंध में विस्तृत अन्वेषण का क्षेत्र पाश्चात्य जगत् के लिए अभी नितांत खाली है। मस्तिष्क, शरीर और वन्य वनस्पतियों तक में संगीत के जीवनदायी प्रभाव को पाश्चात्य विद्वान् और वैज्ञानिक भी मानने लगे हैं।

एक बार इंग्लैंड के एक अस्पताल में आपरेशन के लिए एक रोगी को ले जाया जा रहा था। उस समय बाहर के किसी मकान से संगीत की मधुर ध्वनि आ रही थी। रोगी के मन में संगीत का कुछ ऐसा प्रभाव पड़ा कि वह उठ बैठा और निकलकर अस्पताल के बाहर आकर भौंचक्का-सा देखने लगा कि वह स्वर-झंकार कहाँ से आ रही है ? डॉक्टरों ने देखा, संगीत के प्रभाव ने उसके रोग को ही दबा दिया है।

अमेरिका के कई दंत चिकित्सक एक विशिष्ट संगीत लहरी विद्युत् वाद्य यंत्र से बजाकर दाँत उखाड़ते हैं। रोगियों से पूछने पर वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि—संगीत की मधुर ध्वनि का असर जादू जैसा होता है और वे लोग अपना कष्ट भूल जाते हैं। महिलाओं के प्रसव के समय भी इस प्रकार के प्रयोग किए गए और यह देखा गया कि जिन स्त्रियों को प्रजनन के समय बहुत पीड़ा होती थी, उन्होंने बिना कष्ट के प्रसव किया। इटली में 'टोरेंटेला' नामक नृत्य होता है, तब अनेक मधुर वाद्य बजते हैं, उनसे अनेक पागलपन के रोगी अच्छे होते देखे गये हैं।

भारतवर्ष में शास्त्रीय संगीत की शक्ति और महत्ता के संबंध में इतिहास के पन्ने भरे पड़े हैं। अब उस दिशा में नई खोजें की जाने की आवश्यकता है; पर सामान्य व्यक्तियों को कथा, कीर्तन, भजन, रेडियो-संगीत, छोटे-छोटे वाद्य यंत्रों के वादन और गायन के द्वारा उसके स्वास्थ्य पर पड़ने वाले प्रभाव का लाभ अवश्य उठाना चाहिए। संगीत-स्पंदन शरीर पर बड़ा अनुकूल प्रभाव डालते हैं।

गायन को 'यौगिक स्वास्थ्य साधना' भी कहते हैं। गाते समय मुहँ, जीभ और होंठ ही काम नहीं करते, वरन् आवाज नाभि से खिंचती है और ब्रह्म-रंध्र तक पहुँचती है, फिर तालुओं से खींचकर गले से उसे निकालते हैं। इस तरह कमर से नीचे के हिस्से को छोड़कर शेष संपूर्ण शरीर का भीतरी व्यायाम हो जाता है, उससे बाहरी व्यायाम से भी अधिक प्रभावी परिणाम दिखाई देते हैं।

गायन से शरीर और मस्तिष्क की नाड़ियों का शोधन होता है। ज्ञान-तंतु सजग होते हैं। द्रुत, विलंबित और मध्यम लय में गाये जाने वाले गीतों के अभ्यास से जीभ, वक्षस्थल, हृदय, श्वास और स्वरवाहिनी नलिकाओं, स्नायु-मंडल और नाड़ी-संस्थान और हृदय की रक्तवाहिनी धमनियों में प्रभाव पड़ता है। यह अंग स्वस्थ नीरोग और बलवान् बनते हैं।

गाने से नाड़ी-संस्थान में लहरें उठती हैं, उससे प्रभावित होकर मन भी लहराने लगता है। इस प्रकार की तरंगावली शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य के लिए बहुत लाभयदायक होती है। गाने से फेफड़े और स्वर यंत्र मजबूत होते हैं। तपेदिक आदि बीमारियों का भय नहीं रहता, जबड़े और आमाशय का भी अच्छा व्यायाम हो जाता है और यह सभी संस्थान नीरोग हो जाते हैं। वाद्य संगीत के साथ गायन अथवा नृत्य का भी अभ्यास किया जाता है, तो उससे सिर, गर्दन, कंधा, छाती, पेट और पैर का भी व्यायाम हो जाता है और सारे शरीर में खून का संचार ठीक प्रकार से होने लगता है और शरीर में स्फूर्ति रहती है। बाँसुरी, शहनाई, बीन आदि मुँह से बजाये जाने वाले वाद्यों से जीभ, श्वास-नली फेंफड़े स्वस्थ और मजबूत होते हैं।

संगीत का अभ्यास करना ही लाभदायक नहीं, श्रवण करना भी उतना ही प्राणप्रद होता है। सुनने से और भी स्फूर्ति, चैतन्यता और

रोमांच होता है। गायन और वादन की श्रोताओं पर जो प्रतिक्रिया होती है, उसके फलस्वरूप अधिक प्यास लगना, शरीर की जलन, नशे के प्रभाव, दुर्बलता, विष का प्रभाव, मूर्च्छा, नींद न आना, मानसिक विक्षिप्तता, आलस्य, पीड़ा, बुखार, बार-बार दस्त और पेशाब होना, आंतरिक दाह, रक्त-चाप, खाँसी, पाण्डुरोग, कान के दर्द, हृदय की धड़कन, श्वास रोग आदि को आराम मिलता है। कई बार कुछ रोग असाध्य हो जाते हैं और उन पर संगीत का प्रभाव धीरे-धीरे पड़ता है। धीरे-धीरे विष का शमन होता है; पर यह निश्चित है कि नियमित रूप से गायन का अभ्यास करने से इनसे छुटकारा अवश्य मिलता है।

गायन में स्तुति, मंगलाचरण, भगवान् का ध्यान, माता का ध्यान, छोटे बच्चों को पास बैठाकर गाना, सजावट और सौंदर्यपूर्ण स्थान जैसे देव मंदिर, तीर्थ अथवा जलाशयों के किनारे सामूहिक रूप से गाने का प्रयोग और भी प्रभावोत्पादक होता है। प्राचीनकाल में ऐसे अवसरों पर्व-त्यौहार, पूजन, तीर्थ यात्रा, मंदिरों आदि में संगीत अभ्यास और गायन की व्यवस्था इसलिए की जाती थी कि उन पर्वों और स्थानों के सूक्ष्म प्रभाव को तरंगायित कर उसका भी लाभ उठाया जा सके।

संगीत का प्रभाव मनुष्यों पर ही नहीं, पशु-पक्षियों पर भी पड़ता है। वेणुनाद सुनकर सर्प अपनी कुटिलता भूलकर लहराने लगता है। कई प्रांतों में बहेलिए बीन बजाते हैं, उससे मुग्ध हुए हिरण, मृग निर्भय होकर पास चले जाते हैं। हालैंड में गायें दुहते समय मधुर संगीत सुनाया जाता है। वहाँ की सरकार ने ऐसा प्रबंध किया है कि जब गायें दुहने का समय हो तब मधुर संगीत ब्राड कास्ट किया जाय, ग्वाले लोग रेडियो सेट दुहने के स्थानों पर रख देते हैं। संगीत को गायें बड़ी मुग्ध होकर सुनती हैं और उनके स्नायु संस्थान पर कुछ ऐसा प्रभाव पड़ता है कि वे १५ से लेकर २० प्रतिशत तक अधिक दूध दे देती हैं।

अभी शक्ति तत्त्व के अनुसंधान का क्षेत्र बहुत विस्तृत और अव्यक्त है और जानकारी बढ़ेगी तो यह भी संभव हो जायेगा कि रीछ, भालू व शेर, बाघ जैसे खूँख्वार जानवरों को भी संगीत के

प्रभाव से सात्विक और कोमल मनोवृत्ति का बनाया जाना संभव होगा। संगीतज्ञ कहते हैं कि साम-संगीत को सुनकर चर-अचर सभी निर्विकार और अचेतन स्थिति को पहुँच जाते हैं, उसका लाभ भी तब मिल सकेगा।

संगीत का प्रभाव जीवित जगत् तक ही नहीं, वृक्ष और वनस्पति भी उससे प्रभावित होते हैं। अन्नामलै विश्व-विद्यालय के वनस्पतिशास्त्र के प्रधान डॉ० टी० सी० एन० सिंह ने ध्वनि-तरंगों के द्वारा पौधों को उत्तेजित व वर्धित किए जाने की बात स्वीकार की।

केले और धान की खेती में संगीत की स्वर लहरियाँ डाली जाएँ, तो उनके वजन और उत्पादन-क्षमता में वृद्धि होती देखी गई है।

गाना-नाचना, गीत-संगीत निश्चित रूप से प्रसन्नता की वृद्धि करते हैं। यह शरीर की स्थूल प्रक्रिया है। संगीत को हृदय और भावनाओं में उतार लेने से तो मनुष्य का आत्मिक काया-कल्प ही हो सकता है। संगीत एक प्रकार की स्वर साधना और प्राणायाम है, जिससे शरीर के भीतरी अवयवों का व्यायाम भी होता है और ऑक्सीजन की वृद्धि भी, फलस्वरूप पाचन-शक्ति, गहरी नींद, चौड़ी छाती और हड्डियों की मजबूती का स्थूल लाभ तो मिलता ही है, दया, प्रेम करुणा, उदारता, ममता, आत्मीयता सेवा और सौजन्यता के भावों का तेजी से विकास होता है। यह सद्गुण अपनी प्रसन्नता और आनंद का कारण आप हैं। वैसे ऐसे व्यक्ति के लिए सांसारिक-प्रेम और सहयोग का भी अभाव नहीं रहता।

संगीत का अब सम्मोहिनी विद्या के रूप में विदेशों में विकास किया जा रहा है। अनेक डॉक्टर सर्जरी जैसी डॉक्टरी आवश्यकताओं में संगीत की ध्वनि-तरंगों का उपयोग करते हैं। अमेरिका में बड़े स्तर पर संगीत की सृजनात्मक शक्ति की खोज की जा रही है। वहाँ के वैज्ञानिक ध्वनि-तरंगों के माध्यम से न केवल विश्व-संचार प्रणाली को सरल और सर्वसुलभ बना रहे हैं, वरन् उसके माध्यम से अनेक रहस्यों का उद्घाटन भी कर रहे हैं।

❑ ❑

संगीत द्वारा संवेदना-संचार

▼

'दि ग्लैंड रेगुलेटिंग पर्सनैलिटी' पुस्तक के लेखक डॉ० लुई वैरमोन ने स्वर विज्ञान का विवेचन करते हुए कंठ-नली से संबद्ध एक शक्तिशाली पुंलिंग ग्रंथि की चर्चा की है और लिखा है, थाइराइड ग्रंथि न केवल रक्तताप और रक्तचाप का नियंत्रण करती है, वरन् प्रेम और सहानुभूति बढ़ाने में तथा विकृत स्थिति में, ईर्ष्या-द्वेष उभारने में भी उत्तरदायी होती है। उचित मात्रा में रक्तताप तभी बना रह सकता है, जब थाइराइड से निःसृत होने वाले थाइरोक्सिन स्राव का अनुपात सही रहे। उसका संतुलन बिगड़ने से न केवल रक्त की ऊष्मा एवं गति में गड़बड़ी उत्पन्न होती है, वरन तरह-तरह की दुर्भावनाओं का भी मनुष्य शिकार हो जाता है। थाइराइड की विकृति से शरीर की स्थिति इस प्रकार घोर अशांतिग्रस्त बन जाती है। उस स्थिति में घिरे हुए व्यक्ति किस प्रकार से शारीरिक, मानसिक व्यथाएँ सहनी पड़ती हैं, इसका विस्तृत विवेचन उन्होंने हाइपर थाइरोडिज्म प्रकरण में किया है।

संगीत, मात्र मनोरंजन नहीं है। यदि उसे भावनाओं और प्रेरणाओं से सुसज्जित रखा जा सके, तो इसका परिणाम न केवल गाने सुनने वालों के लिए, वरन् सुविस्तृत वातावरण को श्रेयस्कर परिस्थितियों से भरा-पूरा बनाने में सहायक हो सकता है।

मनुष्य की कोमल भावनाओं को झंकृत, तरंगित करने पर उसमें देवत्व का उदय होता है। इस प्रयोजन की पूर्ति में नादयोग द्वारा शब्द ब्रह्म की साधना करना एक उत्कृष्ट योगाभ्यास है। उससे जन मानस के परिष्कार का लक्ष्य प्राप्त करने में अच्छी सहायता मिल सकती है।

अमेरिका की कला पत्रिका 'दि अदर ईस्ट विलेज' में भारतीय संगीत की भूरि-भूरि प्रशंसा करते हुए लिखा है—'मनुष्य

की भीतरी सत्ता को राहत देने और तरंगित करने की भारतीय संगीत के ध्वनि-प्रवाह में अपने ढंग की अनोखी क्षमता है।"

संगीत का कठोर मन वालों पर भी कैसा प्रभाव पड़ता है ? इस संदर्भ में ट्रावनकोर दरबार के वायलिन वादक कडिवेल्लु एक बार कहीं प्रवास में जा रहे थे। रास्ते में डाकुओं ने उन्हें पकड़ लिया और जो कुछ पास था सभी लूट लिया। लुट जाने के बाद कडिवेल्लु ने अनुनय-विनय करके अपना वायलिन वापिस ले लिया और वहीं बैठकर बजाने लगे। स्वर लहरी पर विमोहित डाकू भावविभोर हो गये। उन्होंने लूटा हुआ सारा माल वापिस कर दिया और कई दिन तक अपने पास रखकर उस वादन का रस पान किया अंत में बहुत पुरस्कार देकर, उन्हें यथास्थान सुरक्षापूर्वक पहुँचा दिया।

लेकिन स्मरण रहे, संगीत की उपयोगिता तभी है, जब उसे उच्च उद्देश्य के लिए प्रयुक्त किया जाए। कलाएँ दुधारी तलवारें हैं। यदि उन्हें पशु-प्रवृत्तियाँ भड़काने के लिए काम में लाया जाए, तो वे घातक भी कम सिद्ध नहीं होतीं।

वैज्ञानिक खोजों से यह पता चला है कि शून्य सृष्टि की निराकार स्थिति जहाँ है, वहाँ से एक प्रकार का शब्द उत्पन्न होता है, जैसे कि काँसे की थाली में चोट करें, तो एक प्रकार का कंपन पैदा होता है, वह देर तक झनझनाती रहती है। ऐसी झंकृतियाँ प्रकृति के अदृश्य अंतराल से पानी में लहरों की भाँति निरंतर उठती रहती हैं। इन झंकृतियों के आघात से इलेक्ट्रॉन परमाणु (विद्युत् घटकों) में गति उत्पन्न होती है और वे अपनी धुरी पर उसी प्रकार घूमने लगते हैं, जिस तरह सृष्टि के अन्यान्य बड़े-बड़े ग्रह, उपग्रह, पृथ्वी, नक्षत्र आदि अपनी धुरी पर घूमते हैं। इलेक्ट्रॉन परमाणुओं में एक विशेष गति उत्पन्न होने से सृष्टि का काम उसी तरह चलने लगता है, जिस तरह चाभी भर देने से घड़ी चलने लगती है। सृष्टि का संचालन इस अदृश्य कंपनों से ही चल रहा है, उनमें इतनी मधुरता, दिव्यता, शांति है, जिसे अमृत कहा जा सकता है। स्वर जितना सूक्ष्म और अंतराल से प्रस्फुटित हुआ होगा, वह

विश्व-नाद को उतना ही स्पर्श कर रहा होगा, अर्थात् उससे उसी अंश में मधुरता, आत्मसुख, दिव्यता, पुलक और शांति की अनुभूति हो रही होगी।

भौतिक सृष्टि का सारा खेल संगीत की शक्तिशाली झंकृतियों के आधार पर चल रहा है। चैतन्य सृष्टि की साकारता भी संगीत के आधार पर है। मस्तिष्क के विद्युत् कोषों से प्रति सेकंड लगभग ३१ विचार-तरंगें निकलती हैं। सिनेमा के पर्दे पर एक सेकंड में सोलह चित्र सामने से गुजर जाते हैं। इतनी तेजी से चित्र घूमने के कारण दृष्टि-भ्रम होता है और ऐसा लगता है कि चित्र न होकर वह कोई जीवित प्राणी काम कर रहा है। उसी प्रकार विद्युत् कोषों में ३१ कंपन एक सेकंड में निकलते हैं, तो उस मूल प्रेरक-प्रक्रिया (नाद-ब्रह्म) का आभास नहीं हो पाता, वरन् वह क्रियाशीलता एक निरंतर चलने वाले "विचार" के रूप में प्रकट हो जाती है। मनुष्य कुछ-न-कुछ सोचता ही रहता है; यह विचार तरंगें ईश्वरीय कंपन की मनोजन्य झंकृति ही होती है, वह जितनी स्थूल होगी, विचार भी उतने ही स्थूल होंगे, किंतु यदि मन को एकाग्र कर लिया जाए और अधिक सूक्ष्म कंपनों तक पहुँचने का प्रयास किया जाए, तो बड़े निर्मल, दिव्य आनंद और शांति एवं संतोषदायक विचारों का सान्निध्य मिलने लगता है। संगीत-साधना का यह एक बड़ा भारी आध्यात्मिक लाभ है।

विचार की सूक्ष्मतम स्थिति तक पहुँचने पर प्राण-वायु जब सहस्रार कमल से टकराती है, तो 'ओम्' की झंकृति से मिलता-जुलता शब्द उत्पन्न होता है। यही अजपा जप है, उसे शास्त्रीय भाषा में 'सोऽहं' ध्वनि कहा गया है। ब्रह्मांड स्थित सहस्रार से जाकर प्राणवायु न टकराए और यह 'सोऽहम्' की ध्वनि न हो, तो मस्तिष्क की चेतना का स्नायविक विद्युत्-शक्ति का अंत हो जायेगा और क्षण भर के अंदर मृत्यु हो जाएगी।

योगी लोग बताते हैं कि शरीर का सूक्ष्म ढाँचा बिलकुल सितार जैसा है। मेरुदंड में इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना के तार लगे हैं। यह तार मूलाधार स्थित कुंडलिनी से बँध गए हैं। आज्ञा चक्र से

लेकर मूलाधार तक के ६ चक्र इसके वाद्य स्थान हैं। इसमें लँ, वँ, रँ, षँ, हँ, और 'ओम्' की ध्वनियाँ प्रतिध्वनित होती रहती हैं। अब स्थूल जगत् में सा, रे, ग, म, प, ध, नी, यह स्वर जब वाद्य यंत्र से ध्वनियाँ निकालते हैं और शरीरस्थ ध्वनियों से टकराते हैं, तो इस संघर्षण और सम्मिलन से मनुष्य का अंतर्जगत् संगीतमय हो जाता है। इन तरंगों में असाधारण शक्ति भरी पड़ी है।

इन तरंगों के प्रवाह से शारीरिक और मानसिक जगत् के सूक्ष्म प्राण गतिशील होते हैं, तदनुसार विभिन्न प्रकार की योग्यता, रुचि, इच्छा, चेष्टा, निष्ठा, भावना, कल्पना, उत्कंठा, श्रद्धा आदि का आविर्भाव होता है। इनके आधार पर गुण, कर्म और स्वभाव का सृजन होता है और उसी प्रकार जीवन की गतिविधियों से सुख-संतोष भी मिलता रहता है। तात्पर्य यह है कि शास्त्रीय संगीत की रचना एक ऐसी वैज्ञानिक प्रक्रिया पर आधारित है कि उसका लाभ मिले बिना रहता नहीं। इसी कारण संगीत को पिछले युग में धार्मिक और सार्वजनिक समारोहों की अविच्छिन्न अंग माना जाता था। आज भी विवाह-शादियों और मंगल पर्वों पर उसकी व्यवस्था करते और उसके लाभ प्राप्त करते हैं। हम देखते नहीं, पर अदृश्य रूप में ऐसे अवसरों पर प्रस्फुटित स्वर-संगीत से लोगों को आह्लाद, शांति और प्रसन्नता मिलती है, लोग अनुशासन में बने रहते हैं।

मिलिटरी की कुछ विशेष परेडों में भी वाद्य-यंत्र प्रयुक्त होते हैं। उससे नौजवानों को कदम तोलने और मिलाकर चलने में बड़ी सहायता मिलती है। कारण उस समय सबके अंतर्जगत् एक-सी विचार तरंगों से आविर्भूत हो उठते हैं। ऐसे लाभों को देखकर विवाह-शादियों, व्रत, त्यौहारों, मंदिरों में पूजन आदि के समय कथा-कीर्तन की व्यवस्था की गयी थी। अब भी उनका लाभ उठाया जाना चाहिए। जहाँ यह व्यवस्था प्रतिदिन हो सके, वहाँ दैनिक व्यवस्था रहे, तो उससे स्थानीय लोगों की अदृश्य रूप से आत्मिक और आध्यात्मिक सेवा की जा सकती है। संयोजनकर्ताओं को तो दुहरा लाभ मिलता ही है।

शास्त्रीय संगीत की इस विज्ञानभूत प्रक्रिया को अब पाश्चात्य देश भी अच्छी तरह समझने लगे हैं। अमेरिका, फ्रांस, ब्रिटेन और रूस आदि सुविकसित देशों में वर्तमान पीढ़ी के युवक तेजी से भारतीय संगीत सीख रहे हैं और उसके अन्य कारणों में इसी संगीत से उत्पन्न होने वाली शारीरिक एवं मानसिक प्रतिक्रियाओं का प्रभाव मुख्य है। उससे लोगों को बड़ी शांति मिलती है, फलस्वरूप भारतीय संगीत का अधिक लाभ प्राप्त करने के लिए वे लोग भारतीय भाषाएँ सीखना चाहते हैं।

यद्यपि यह विद्याएँ अब लुप्तप्राय हैं, तो भी अभी इस दिशा में सब कुछ नहीं खो गया। उत्तर-प्रदेश के पूर्वी इलाकों में एक विशेष प्रकार के वाद्य से सर्प का विष दूर किया जाता है। कुछ प्रांतों में थाली बजाकर विशेष रोगों का उपचार करने की प्रथा अभी भी है। पाँच तत्त्वों से बने शरीर में वात, पित्त, कफ को स्वरों और रसों के माध्यम से घटाने-बढ़ाने से आशाजनक स्वास्थ्य लाभ मिलता है। बसंत-ऋतु में बसंत-राग खून में एक नई जाग्रति, उमंग तथा प्रसन्नता उत्पन्न करता है। वर्षा ऋतु में राग-मल्हार से आनंद के भाव उत्पन्न होते हैं। यह प्रभाव कई बार बड़ी तीव्रता से भी होते हैं।

प्रातःकाल राग-भारती और राग-भैरवी आदि से भक्ति-रस का प्रादुर्भाव होता है, जिससे स्वास्थ्य और मानसिक शुद्धता की प्राप्ति होती है। संगीत सुनकर कई व्यक्तियों को वैराग्य हो जाता है। दीपक-राग गाते समय भावावेश आ जाने के कारण अथवा गति भंग के कारण तानसेन का सारा शरीर काला पड़ गया था। बाद में कुछ महिलाओं के संगीत से ही वह रोग ठीक हुआ और उसे पहले जैसी त्वचा मिल सकी थी।

युवकों के चरित्र-निर्माण में संगीत को एक अत्यंत प्रभावशाली साधन के रूप में प्रयुक्त किया जा सकता है। अरस्तू कहा करते थे—"स्वर और लय के योग से कैसी भी भावनाएँ उत्पन्न की जा सकती हैं।" महाराष्ट्र-राज्य के भूतपूर्व राज्यपाल श्री प्रकाश जी ने एक बार कहा—"संगीत की शिक्षा स्कूलों में अनिवार्य कर देनी चाहिये। इससे युवक विद्यार्थी में मानसिक एकाग्रता और जागरूकता

का विकास स्वभावतः होगा। यह दो गुण स्वयं उसके व्यक्तित्व में अन्य गुणों की वृद्धि करने में सहायक बन सकते हैं।

हमारे प्रत्येक देवता के साथ संगीत का अविच्छिन्न संबंध होना यह बताता है कि विश्व की सृजन-प्रक्रिया में संगीत का चमत्कारिक प्रभाव है। हृषीकेश का पांचजन्य, शंकर का डमरू, भगवान् कृष्ण की मुरली, भगवती वीणा-पाणि सरस्वती की वीणा का रहस्य एक दृष्टि से यह भी है कि सृष्टि का प्रत्येक अणु संगीत शक्ति से गतिशील हो सकता है।

विश्व संगीतमय है, संगीत ही इसकी प्रेरणा और प्राण-शक्ति है। यह तत्त्व इतना महत्त्वपूर्ण और शक्तिसंपन्न है कि इसके उपयोग से हम मृत्योन्मुख जीवन को अमरत्व की ओर, निराश जीवन को आशा और संतोष तथा व्यथित और परिक्लांत जीवन को शाश्वत शांति और आनंद की ओर अग्रसर कर सकते हैं।

□ □

संगीत का प्रबल प्रभाव

▼

गायन को एक प्रकार का योगाभ्यास एवं वक्ष तथा कंठ संस्थान के समीपवर्ती अवयवों का महत्त्वपूर्ण व्यायाम माना गया है। भारतीय संगीतशास्त्र के आचार्यों के अनुसार गायन में आवाज नाभि केंद्र से उठती है, ब्रह्मरंध्र तक पहुँचती है, तालू, कंठ, फुफ्फुस, हृदय, आमाशय, यकृत एवं आँतों को प्रभावित करती हुई—एक गति चक्र बनाती हुई पुनः अपने उद्गम स्थान नाभि तक पहुँचती है। यह गतिचक्र अपने प्रभाव क्षेत्र के सभी अवयवों का न केवल व्यायाम प्रयोजन पूरा करती है, वरन् उनमें प्राणवायु का अतिरिक्त अनुदान भी देती है।

यों मोटे तौर से यह प्रतीत होता है कि आवाज कंठ, तालू, जिह्वा, ओष्ठ आदि के सम्मिलित संचालन से निकलती है, पर यह बात मात्र वार्तालाप के बारे में ही सत्य है। गायन में एक विशेष प्रकार के खिंचाव, तनाव एवं उल्लास की जरूरत पड़ती है और वह एक स्नायु विद्युत् के रूप में नाभि-केंद्र से उद्भुत होती है। उस उद्भव के साथ न केवल स्वर संधान होता है, वरन् षट्चक्रों के, उपत्यकाओं के त्रिविध ग्रंथियों के सुप्त संस्थान भी जाग्रत् होते हैं। इस प्रकार गायन न केवल गायक के लिए भावोद्वेलित करके आनंदित करता है, वरन् आंतरिक अवयवों का व्यायाम होते रहने से उसके स्वास्थ्य-संरक्षण एवं आंतरिक दिव्य शक्तियों की प्रसुप्त स्थिति को जागरण में परिवर्तित करने का लाभ भी मिलता है। शरीर और मन को उभयपक्षी शक्ति प्रदान करने की जिस सरलता और अधिकता भरी क्षमता गायन में है, उतनी और किसी में नहीं। भावनात्मक उल्लास के प्रभाव में उससे मानसिक तनावों एवं अवसादों का भी निराकरण होता रहता है।

गायन की तीन लय हैं—द्रुत, विलंबित, मध्यमाद्रुत अर्थात् तीव्र गति का गायन। इससे जीभ, कंठ, वक्ष और हृदय का विशेष व्यायाम होता है। विलंबित अर्थात् स्वर को खींचकर गाना। इसका

प्रभाव स्वरवाहिनी नलिकाओं को खोलता और सुदृढ़ बनाता है। मध्यम एवं सामान्य गायन की प्रतिक्रिया स्नायु मंडल, नाड़ी-संस्थान, हृदय एवं रक्त वाहिनियों पर होती हैं। जिनके जो अवयव दुर्बल हैं, वे उसके अनुरूप लय चुनकर इस प्रकार से आंतरिक अवयवों की सहज चिकित्सा कर सकते हैं।

हास्य रस, वीर रस, श्रृंगार रस, शांत रस आदि नौ रस गायन के माने गये हैं, उनके लिये विशेष राग-रागिनियाँ और विशेष समय का निर्देश किया गया है। समय, राग और रस—इनके सम्मिश्रण से एक विशेष प्रकार का ध्वनि-प्रवाह उत्पन्न होता है और उससे अगणित मानसिक रोगों की चिकित्सा हो सकती है।

शरीर पाँच तत्त्वों से बना माना जाता है। आयुर्वेद शास्त्र के अनुसार उसकी गतिविधियाँ वात, पित्त, कफ के अनुसार दबती-उभरती रहती हैं। बायोकैमिक चिकित्सा में बारह नमक शरीर के संचालक और आरोग्य के आधार हैं। होम्योपैथी में विष तत्त्वों की विवेचना की गई है। क्रोमोपैथी (सूर्य चिकित्सा) में सात रंगों की न्यूनाधिकता स्वास्थ्य के संतुलन-असंतुलन का कारण है। स्वर-शास्त्र के अनुसार काय-कलेवर में सप्त सूक्ष्म नाद उठते रहते हैं। इन्हें जगत् में सप्त स्वरों से पहचाना जाता है। सूक्ष्म स्वरूप के दबने-उभरने से जो शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य असंतुलन उत्पन्न होता है, उसे स्वर विज्ञान के आधार पर उपयुक्त गायनों के विधान से संतुलित किया जा सकता है।

ऋतुओं के अनुरूप विशिष्ट गायनों के विधान में भी ऐसे ही रहस्य छिपे पड़े हैं। ब्रसंत ऋतु में बसंत-राग, वर्षा में मेघ-मल्हार आदि के लिए संकेत हैं। जिस प्रकार प्रातःकाल प्रभात-राग एवं भक्ति-रस की उपयोगिता मानी गई है, उसी प्रकार दिन-रात के विभिन्न समयों में विभिन्न राग एवं रस उपयोगी माने गए हैं, यह व्यवस्था ऐसे ही मनमानी नहीं है, वरन् इसके पीछे शारीरिक एवं मानसिक आरोग्य के महत्त्वपूर्ण आधारों का समावेश है।

सामान्यतया गायन को एक आकर्षक मनोरंजन मात्र माना जाता है; पर यदि उसके संबंध में अधिक गहराई तक उतरा जाय, तो प्रतीत होगा कि वह शारीरिक एवं मानसिक रोग-निवारण एवं शक्ति-संवर्धन का भी एक महत्त्वपूर्ण माध्यम है। विभिन्न रोगों से ग्रस्त व्यक्तियों को समय तथा कष्ट के अनुरूप गायन विद्या बताकर लाभान्वित किया जा सकता है। जिनका स्वास्थ्य साधारणतया ठीक है, किंतु हृदय, फुफ्फुस आदि विशेष अवयवों को परिपुष्ट करना हो, तो उसके लिए भी गायनों का अवलंबन लिया जा सकता है। खिलाड़ी एवं पहलवानों की सफलता हृदय एवं फुफ्फुसों की बलिष्ठता पर निर्भर रहती है। यह प्रयोजन वे उपयुक्त गायन विधि अपनाकर पूरी कर सकते हैं।

गायन के अतिरिक्त वाद्य संगीत की अपनी महत्ता है। गायन जिन्हें नहीं आता, वे वाद्य की ध्वनि-लहरियों के सहारे उपयुक्त लाभ प्राप्त कर सकते हैं। यदि स्वयं बजाना आता हो, तो उनके सहारे सिर, गर्दन, कंधे, पेट आदि का उपयोगी व्यायाम हो सकता है। क्रमबद्ध और तालबद्ध क्रियाकलाप से उत्पन्न होने वाली शक्ति-धाराओं के संबंध में जिन्होंने पढ़ा-सुना है, वे सहज ही यह समझ सकते हैं कि वाद्य-यंत्र बजाने के साथ-साथ जो ताल-क्रम चलता है, उसके कैसे उपयोगी स्पंदन उठते हैं और उससे किस प्रकार मनुष्य लाभान्वित होता है। बाँसुरी, शहनाई प्रभृति बाजे तो एक प्रकार से गायन द्वारा प्राप्त हो सकने वाले लाभों की ही आवश्यकता पूरी करते हैं। जो लाभ गायन का है, वह मुँह से बजाये जाने वाले बाजे भी दे सकते हैं।

गायन और वाद्य यदि स्वरशास्त्र के अनुरूप हों, तो उसका सुनने वालों पर उपयोगी प्रभाव पड़ता है। जो न गाना जानते हैं, न बजाना, वे अपनी शारीरिक-मानसिक स्थिति के अनुरूप स्वर-लहरी उपयुक्त मात्रा में सुनकर भी बहुत हद तक लाभान्वित हो सकते हैं। संगीत के संबंध में यदि आवश्यक शोध किया जाए, तो उससे शारीरिक एवं मानसिक आरोग्य के अभिवर्द्धन में बहुत सहायता ली जा सकती है। इस प्रकार के प्रयोग योरोप एवं अमेरिका के

वैज्ञानिक कर भी रहे हैं और उन्हें आशाजनक सफलता भी मिली है। दुधारू पशुओं को दुहते समय अमुक ध्वनि का संगीत सुनाकर अधिक दूध प्राप्त करने में बहुत सहायता मिली है। मानसिक रोगियों पर भी संगीत से आश्चर्यजनक लाभकारी प्रभाव होने का निष्कर्ष सामने आया है। पेड़-पौधों की उन्नति में भी संगीत की प्रभावी शक्ति सिद्ध हुई है। प्रयोगों से यह प्रमाणित हुआ है कि ध्वनि-तरंगों द्वारा पेड़-पौधों की, फसलों की उन्नति में आशाजनक सहायता मिल सकती है।

अमेरिका संगीत चिकित्सक डॉ० हार्ल्स एस्टले ने अपनी उस प्रक्रिया को अधिक व्यवस्थित करने का प्रयत्न किया है। उन्होंने लगातार बीस वर्ष इसी पद्धति से चिकित्सा की है और बताया है कि, ऐलोपैथी द्वारा रोग मुक्त होने वालों की अपेक्षा संगीत उपचार से अच्छे होने वालों का अनुपात कहीं अधिक है। विशेषतया मानसिक रोगों में तो वह अचूक काम करती है। मांस-पेशियों और नाड़ी संस्थान की गड़बड़ी तो निश्चित रूप से अन्य उपायों की अपेक्षा संगीत द्वारा अधिक सफलतापूर्वक और अधिक जल्दी अच्छी की जा सकती है।

पूर्व जर्मनी के गोटिंगन नगर के संगीत द्वारा चिकित्सा करने वाले जौहान्स शूमिलिन ने अपने प्रयोगों और अनुसंधानों से यह सिद्ध किया है कि, मनुष्य की तरह ही बीमार पशुओं को भी संगीत उपचार से रोग-मुक्त किया जा सकता है। उन्होंने अनुभवों और परीक्षणों का विस्तृत विवरण प्रकाशित करते हुए यह बताया है कि किस प्रकार बिना दवा-दारू के ही कितने कष्टसाध्य रोगों से ग्रस्त मनुष्यों ने ही नहीं, वरन् पशुओं ने भी रुग्णता से छुटकारा पाया।

चिकित्साशास्त्र के साथ-साथ भूतकाल में विभिन्न प्रकार से संगीत का उपयोग होता रहा है। मिस्र के चिकित्सक दवा-दारू करने के अतिरिक्त संगीतमय मंत्रों का भी उच्चारण करते थे। अफ्रीका के वन्य-प्रदेशों की आदिवासी जातियाँ विशेष प्रकार की ध्वनियाँ मुख से उच्चारण करके विभिन्न रोगों का उपचार करने में दक्ष रही है। डेविट हार्प नामक संगीतकार सम्राट् सॉल को असाध्य

रोग से मुक्त करने में अपनी वाद्य कला को पूर्णतया सफल सिद्ध कर चुका है। होमर के अनुसार यूलीसेस को प्राणघातक रोग से संगीत उपचार से ही मुक्ति मिली थी।

इटालियन नृत्य 'टैरेनटेला' के बारे में प्रसिद्ध है कि जब वह नृत्य आरंभ होता है तो दर्शक आवेश में आ जाते हैं और वे स्वयं भी अपनी मान-मर्यादा को छोड़कर नृत्य करने लगते हैं। इस नृत्य में विशेष प्रकार के संगीत की ही प्रधानता रहती है।

मानसोपचार में अब संगीत ध्वनि-प्रवाह को बहुत महत्त्व दिया जाने लगा है। पाश्चात्य देशों के प्रायः सभी मानसिक रोगों के अस्पतालों में इस प्रकार का प्रबंध है कि विभिन्न स्तर के पागलों एवं सनकियों को विशेष प्रकार की संगीत-ध्वनियों से भाव-विभोर कर दिया जाए। इससे उनका उन्माद घटता है और मनःस्थिति में आशाजनक सुधार होता है। दंत चिकित्सकों ने भी अब इस पद्धति को अपने व्यवसाय में उपयोग करना आरंभ किया है। दाँत उखाड़ने, इंजेक्शन लगाने एवं आपरेशन करने की कठिन घड़ियों में संगीत उनका मानसिक स्तर संतुलित बनाए रहता है और दंत चिकित्सा के कठिन क्षण सहज ही निकल जाते हैं।

संगीत की विशेष प्रकार की ध्वनि-तरंगों के साथ नृत्य मुद्राएँ मिलकर सोना-सुगंध के सम्मिश्रण जैसा प्रभाव उत्पन्न करती है। घुँघुरुओं की, पायलों की झंकारें, नृत्य-प्रवाह में थिरकते हुए चरण जब विशेष प्रकार की संगीत लहरियों के साथ लहराती हैं, तो उससे नर्तक ही नहीं, दर्शक भी अपने आपको किसी अति मानवी लोक में विचरण करते हुए पाते हैं। उस भाव-विभोरता की स्थिति में मन पर जमे हुए तनावों का भार सहज ही हलका होता है और उलझी हुई मनःस्थिति सहज ही सुलझने लगती है। यों नृत्य का एक स्वतंत्र शास्त्र भी है, पर वस्तुतः वह संगीत के साथ ही जुड़ा हुआ है। यों गायन और वाद्य, व्याकरण और साहित्य की तरह दो अलग-अलग पक्ष भी हैं फिर भी उन्हें परस्पर संबद्ध एवं पूरक ही माना जाता है। सो श्रृंखला की तीसरी कड़ी नृत्य भी है। यह समन्वय एक विशेष प्रकार के ऐसे प्राणायाम का सृजन करता है,

जो जीवन में उल्लास भरी परिस्थितियाँ उत्पन्न करता है। आमतौर से गायक, वादक और नर्तक स्वस्थ ही नहीं, प्रफुल्लित, स्फूर्तिवान्, सुकोमल एवं सुरम्य-मनोहर भी होते हैं।

युद्धों में संगीत का सदा से प्रयोग होता रहा है। सैनिकों में शौर्य, साहस एवं लड़ने का उत्साह-पराक्रम जगाने में वाद्यों की उपयोगिता सदैव स्वीकार की जाती रही है। महाभारत के सूत्रधार भगवान् कृष्ण ने स्वयं पांचजन्य शंख बजाकर युद्ध उद्‌घोष किया था। बिगुल, नगाड़े, भेरी, मृदंग, बीन, झाँझ जैसे बाजों के उपयोग का वर्णन युद्ध-इतिहासों में मिलता है। वर्तमान शताब्दी में इस दिशा में और भी अधिक प्रगति हुई है। युद्ध वाद्यों की श्रृंखला में ऐसे बाजे विनिर्मित हुए हैं, जो भयभीत और कायरों की नसों में भी मरने-मारने का आवेश भर सकें।

इतना ही नहीं, शत्रु पक्ष के सैनिक में निराशा, शिथिलता एवं भय-ग्रस्तता उत्पन्न करने वाली ध्वनि-लहरियाँ भी उत्पन्न की गई हैं और उनसे प्रतिपक्षी को परास्त करने में एक सीमा तक अच्छी सफलता मिली है। युद्ध बंदियों के बीच ऐसी ध्वनियाँ बजाई जाती हैं, जिससे वे भविष्य में युद्ध करने योग्य ही न रह जाएँ और उनसे भविष्य में किसी पराक्रम की आशा न की जाए।

❑ ❑

संगीत की रोग निरोधक शक्ति

▼

पिट्सबर्ग (अमेरिका) की एक अल्युमिनियम कंपनी (अल्कोआ) के फिल्म डाइरेक्टर राल्फ लारेन्स हॉय संगीत से बड़ा प्रेम रखते हैं। वे स्वयं एक सुप्रसिद्ध वायलिन वादक और उनकी धर्मपत्नी ग्रेश्चेन अच्छी पियानो वादिका हैं। दोनों एक दिन संगीत का अभ्यास कर रहे थे। एकाएक उन्हें एक महिला की याद आई। इस परिवार से उनका घनिष्ठ संबंध था, पर इधर बहुत दिनों से उनकी भेंट नहीं हो सकी थी।

दूसरे दिन उन्होंने विस्तृत छान-बीन की, तो पता चला कि वह महिला रुधिर नाड़ियों की किसी भयंकर बीमारी से पीड़ित, रोग शैया पर पड़ी दिन काट रही है। अगले दिन लारेन्स हॉय अपनी धर्मपत्नी सहित उनसे मिलने गये। रोगिणी का उपचार करने वाले डॉक्टरों से पूछ-ताछ करने पर पता चला कि रोग असाध्य हो चुका है और उसके अच्छा होने की कोई संभावना नहीं है।

कितने दिनों से वह इस तरह का कष्ट भुगत रही है। इस बीच उनकी आत्मा ने शायद ही कभी प्रफुल्लता अनुभव की हो। शरीर आधि-व्याधि से पीड़ित होता है, तो भला यह संसार किसे अच्छा लगता है; पर एक वस्तु परमात्मा ने ऐसी भी बनाई है—लारेन्स हॉय ने विचार किया कि, वह कैसे भी पीड़ित-हृदय को भी प्रसन्नता प्रदान करती है, वह है— संगीत। उन्होंने सोचा— संगीत सबको आत्म-संतोष देता है, क्यों न आज इन्हें संगीत सुनाऊँ, संभवतः उससे इन्हें कुछ शीतलता मिले।

पति-पत्नी रोगिणी के पास बैठ गये। पति ने वायलिन उठाया, पत्नी ने पियानों पर संगीत दी। धीरे-धीरे संगीत लहरियाँ उस क्रंदन भरे कमरे में गूँजने लगीं। रोगिणी को ऐसा लगा जैसे कष्ट-पीड़ित अंगों पर कोई हलकी-हलकी मालिश कर रहा है। कर्ण-प्रिय मधुर संगीत-धारा प्राण-प्रिय वस्तु की तरह मिली। मंत्र-मुग्ध की तरह वे

उन स्वर लहरियों का आनंद लेती रहीं और उसी में आत्म-विभोर होकर सो गई। रोगिणी होने के बाद ऐसी प्रगाढ़ निद्रा उन्हें कभी नहीं आई थी। जागी, आँखें खोलीं, तो उन्होंने अपने मन में विलक्षण शांति और विश्राम की अनुभूति की। इस कृपा के लिए उन्होंने लारेन्स हॉय को हार्दिक धन्यवाद प्रदान किया। उन्हें रोग में भी बड़ा आराम मिला।

लारेन्स हॉय घर लौट आए और कई दिन तक इस घटना पर विचार करते रहे। उनकी पत्नी ने सुझाया—क्यों न ऐसी व्यवस्था करें कि इन्हें प्रतिदिन ऐसा संगीत सुनने को मिल जाया करे। बहुत देर तक उन्होंने विचार-विनिमय कर एक योजना बनाई। उसके अनुसार कई तरह के गीतों को विभिन्न मनमोहक ताल, स्वरों पर टेप-रिकार्ड करा लिया और सारे टेप उस महिला को भेज दिए, जो वर्षों से स्नायु-रोग से पीड़ित थी। यह टेप पाकर महिला को मानो अमृत मिला। वह नियमित रूप से यह संगीत भरे टेप-रिकार्ड सुना करती और उन स्वरों में तन्मय हो जाती। जब स्वर समाप्त होते तो लगता शरीर के रोग-परमाणु शरीर से निकल गये हैं और वह हलकापन अनुभव कर रही है। सचमुच कुछ ही दिनों में वह पूर्ण स्वस्थ हो गई। संगीत-शक्ति की यह बड़ी भारी विजय थी, जिसने भौतिक विज्ञान (डॉक्टरी) को भी पछाड़कर रख दिया।

राल्फ लारेन्स हॉय इस घटना से इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने रोगियों के लिए संगीत-चिकित्सा की एक नई दिशा ही खोल दी। 'आर फोर आर' (रिकार्डिंग फार रिलैक्सेशन, रिफ्लेक्शन, रिस्पॉन्स एंड रिकवरी) नाम से यह प्रतिष्ठान आज सारे अमेरिका और यूरोप में छाई हुई है। इस संस्थान की संगीत चिकित्सा ने हजारों रोगियों को अच्छा किया है और अब वह एक अति साधनसंपन्न संस्था की तरह विकसित होकर लोक-कल्याण की दिशा में प्रवृत्त है।

प्रारंभ में उन्होंने कुछ शास्त्रीय धुनें तैयार कीं और उन्हें पिट्सवर्ग के अस्पतालों में, जहाँ वृद्ध लोग रहते थे, वहाँ तथा घायल सैनिकों के अस्पतालों में जाकर सुनाना प्रारंभ किया। उससे

रोगियों को जो शारीरिक तथा मानसिक लाभ हुआ, उससे उनका उत्साह और भी बढ़ गया। इस दृष्टि से देखें तो विदेशी हम भारतीयों से हजार गुना अच्छे हैं। जो वस्तु उन्हें उपयोगी और मानवीय हित में दिखाई दी, उसके प्रति निष्ठा और कार्यान्वयन का साहस हमें विदेशियों से ही सीखना होगा। उस तरह की हिम्मत हममें भी आ गई होती तो न केवल दहेज, जाति भेद, ऊँच-नीच, छूआछूत, अंध-विश्वास, पलायनवाद, जैसी सामाजिक बुराइयों को पूरी तरह से समाज से उखाड़ चुके होते, वरन् ज्ञान-विज्ञान, भाषा, भेष, साहित्य और संस्कृति के पुनर्निर्माण में भी बहुत आगे बढ़ चुके होते।

सेवा-भाव और परिश्रम के साथ संगीत-साज के समन्वय ने एक ऐसा प्रभाव उत्पन्न किया है कि कुछ ही समय में न केवल पिट्सवर्ग वरन् अमरीका के दूसरे शहरों में भी इस संस्था की चर्चा होने लगी। एक लड़का जिसके हाथ-पाँव लकवे से मारे गये थे। स्वस्थ होने की कोई आशा नहीं थी, किंतु उसे लारेन्स का शास्त्रीय संगीत सुनने का सौभाग्य मिला। उसके फलस्वरूप उसका रोग अच्छा हो गया, अब वह युवक कंपनी में टाइपिस्ट का काम करता है।

अस्पताल में एक ऐसी वृद्ध महिला प्रविष्ट की गई, जिसका मस्तिष्क लगभग शून्य हो गया था। वह न तो बोलती थी और न ही चल-फिर सकती थी। भीतर का कष्ट आँसुओं से ही दिखाई देता था। डॉक्टर अनुभव करते थे कि रोगों की प्रक्रिया शारीरिक ही नहीं मानसिक भी है, मानसिक ही नहीं, वह आत्मिक भी है; क्योंकि बाह्य परिस्थितियाँ ही नहीं, अपने स्वभाव और संस्कार भी कई बार ऐसे कर्म करने को विवश कर देते हैं, जो हमारे शरीर को रोगाणुओं से भर देते हैं। इतना सोचने पर भी चिकित्सा का कोई विकल्प उनके पास नहीं था।

डॉ० हॉय ने कहा—तब जबकि मनुष्य का रोग सब ओर से असाध्य हो गया हो, उसकी चेतना के अंतिम स्रोत तक को संगीत की अदृश्य स्वर लहरियों से प्रभावित और ठीक किया जा सकता

है। फलस्वरूप यह मामला भी उन्हें सौंपा गया। श्री हॉय ने कुछ पुराने लोकप्रिय गीतों के टेप उस महिला को सुनाये। थोड़े ही समय में वह स्त्री न केवल गुनगुनाने और बोलने लगी, वरन् जब भी 'टेप' बजाए जाते, उसके पाँव भी नाचने की मुद्रा में गति देने लगते।

एक और रोगी जो उठकर चल भी नहीं सकता था, जिसका सदैव आत्महत्या करने का प्रयत्न रहता था, वह भी श्री हॉय के संगीत से अच्छा हो गया। नार्वे का एक मरीज भी ऐसी ही निराशाजनक स्थिति में हॉय के पास आया। दिक्कत यह थी कि डॉ० हॉय के पास नार्वे संगीत के रिकार्ड नहीं थे, फलस्वरूप उन्होंने वहाँ के शासनाध्यक्ष को पत्र लिखा। उस पत्र में उन्होंने संगीत की शोध संबंधी उपलब्धियों का भी वर्णन किया, उससे नार्वे का राजा बड़ा प्रभावित हुआ। उसने अच्छे-अच्छे रिकार्ड हॉय को भिजवा दिये। हॉय के प्रयोग से यह रोगी भी अच्छा हो गया।

अब हॉय के समक्ष एक दूसरा ही जीवन था—संगीत विद्या का प्रसार। हम में से सैकड़ों ऐसे हैं, जो अपनी अमूल्य संगीत-निधि के लिए बहुत कुछ कर सकते हैं, पर स्वार्थ, संकीर्णता और हिम्मत के अभाव में चाहते हुए भी कुछ कर नहीं पाते, लेकिन डॉ० हॉय ने जैसे ही यह निश्चित समझ लिया कि संगीत मनुष्य के लिए एक ईश्वरीय वरदान के समान है। उन्होंने 'अल्कोआ' कंपनी के सम्मानास्पद पद से त्यागपत्र दे दिया। इन दिनों वे न्यूयार्क राज्य के एक गाँव ब्रेनाड्र्स विला में रहते हैं। यह स्थान शेटूगे लेक (झील) के पास है। यहाँ उनका सब प्रकार के आधुनिक साधनों से सज्जित आर्केस्ट्रा तथा साउंड रिकार्डिंग थियेटर है। एक छोटा-सा आश्रम जैसा है, वहीं से सब कार्यक्रमों का संचालन, पत्र व्यवहार तथा शोध कार्य संपन्न होता है। श्री हॉय का विश्वास है कि एक दिन यह भी आएगा, जब मानवीय आदर्शों का नियमन सचमुच संगीत द्वारा होने लगेगा, क्योंकि उसमें आश्चर्यजनक आकर्षण और मधुरता है।

इस कार्य में अकेले श्री हॉय संलग्न हों सो बात नहीं, वहाँ के अधिकांश लोग शास्त्रीय संगीत की महत्ता अनुभव करने लगे हैं। यही कारण है कि सार्वजनिक संस्था के रूप में इन संस्थान को साधनों का कभी अभाव नहीं अखरा। न्यूयार्क फिलहार्मोनिक आर्केस्ट्रा के प्रसिद्ध अभिनेता डैनी तथा मार्मन टैबर्नेक क्वार, जो कि अमरीका की एक अंतर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त धार्मिक भजनों को गाने और प्रसार करने वाली मंडली है, ने अपने सामान और कार्यक्रमों के टेप हॉय को दिए हैं। स्व० राष्ट्रपति कैनेडी ने ह्वाइट हाउस में जो भी संगीत कार्यक्रमों के टेप थे, उन सबकी नकल करके डॉ० हॉय को भेंट कर दी। प्रसिद्ध संगीतकार जेनिस हरसांटी ने अपना स्वर बिना मूल्य हॉय को मानवीय सेवाओं के लिए दिया। नार्वे के अतिरिक्त लिस्बन (पुर्तगाल) के केलूस्ट गुल्बेकियन फाउंडेशन ने भी बहुत-से पुर्तगाली रिकार्ड दिए हैं। अब तक (सन् १६७६) इस संस्था के पास ७०० से भी अधिक टेप तथा २००० से अधिक ऐसी संस्थाएँ हैं, जो इस कार्य में नियमित सहयोग देती हैं। जन सहयोग इससे भिन्न है। हम भी चाहें तो अपने देश के प्रभावशील व्यक्तियों से अथवा जन-सहयोग से कोई इस तरह का आंदोलन खड़ा करके लोक-जीवन को सरस और प्राणवान् बना सकते हैं।

डॉ० हॉय को तो शोध कार्य भी करना पड़ता है। हमारे शास्त्रीय संगीत में तो सब कुछ पहले से ही उपलब्ध है। टोड़ी, दीपक, मेघ, मल्हार, पचड़ा आदि राग, भेरी, वंशी, मृदंग, पटह, पणव, कोण, वीणा, सितार, किलकिला, क्रकच, स्वेड आदि वाद्ययंत्र उसके प्रमाण हैं। इनके प्रसार भर की आवश्यकता है। यदि कुछ लोग शास्त्रीय संगीत की प्रतिष्ठा के लिए डॉ० हॉय की तरह ही सेवा व्रत लेकर जुट जाएँ, तो अपनी महानतम लोक-कला को फिर से नया जीवन दिया जा सकता है। व्यक्तिगत रूप से तो संगीत जैसी ललित कला के प्रति अभिरुचि सभी को रखनी चाहिए।

राल्फ लारेन्स हॉय इस तरह का प्रयोग करने वाले कोई प्रथम व्यक्ति नहीं है। उन्हें मिशन बद्ध काम करने में ख्याति मिली

है, वैसे इनसे पूर्व डॉ० एडवर्ड पोडोलास्की (न्यूयार्क) भी प्रसिद्ध चिकित्सक और संगीतज्ञ हो चुके हैं। उन्होंने लिखा है—"गाने से रक्त संचालन बढ़ता है, शिराओं में नवजीवन संचार होता है।" जो लोग गाने-बजाने और नाचने आदि किसी का भी नियमित अभ्यास करते हैं, उनमें फेंफड़े और जिगर संबंधी रोग बहुत कम पाए जाते हैं। शरीर के विजातीय द्रव्य और विषैले पदार्थों को निकालकर बाहर करने में संगीत का असाधारण महत्त्व है। यदि सहायता ली जाए, तो उससे अनेक प्रकार के रोगों का उपचार किया जा सकता है।

यह शारीरिक लाभ किसी श्रद्धा या विश्वास के परिणाम हों, सो बात नहीं। श्रद्धा और विश्वास से लाभ की मात्रा तो आश्चर्यजनक ढंग से बढ़ती है, पर यदि वह न हो, तो भी लाभ मिलने का सुनिश्चित विज्ञान है, उसे समझने के लिए हमें शब्द की उत्पत्ति और उसके विज्ञान को जानना पड़ेगा।

एक वस्तु का दूसरी वस्तु से आघात होता है, तब 'शब्द' की उत्पत्ति होती है। जिस वस्तु पर चोट की जाती है, उसके परमाणुओं में कंपन उत्पन्न होता है। वह कंपन आस-पास की वायु को भी प्रकंपित करता है। हवा में उत्पन्न कंपन की लहरें मंडलाकार गति से फैलती हैं और कुछ ही समय में सारे संसार में छहर जाती हैं। यही कंपन कान के पर्दे से टकराते हैं, तो कान की भीतरी झिल्ली समानुपाती गति से हिलने-डुलने लगती है और विद्युत् चुंबकीय तरंगों के रूप में कान की नसों से होती हुई, मस्तिष्क के श्रवण-केंद्र तक जा पहुँचती है।

हम जानते हैं कि शरीर में नाड़ियों की संख्या और बनावट इतनी अधिक और सघन है कि प्रत्येक अवयव का संबंध शरीर के रत्ती-रत्ती भर स्थान से है। कभी कान में कोई पतली लकड़ी या और कोई वस्तु चली जाती है, तो सारे शरीर में विद्युत् आवेश दौड़ जाने की तरह की सिहरन होती है। वाह्याघात से परमाणुओं के कंपन जब मस्तिष्क के श्रवण-केंद्र तक पहुँचते हैं, तब वे इसी सिद्धांत के आधार पर शरीर के संपूर्ण परमाणुओं में थिरकन उत्पन्न

कर देते हैं, पर यह थिरकन, कंपन या सिहरन शब्द के ताल-सुर और गति पर अवलंबित होती हैं, इसीलिए प्रत्येक शब्द का एक-सा प्रभाव शरीर पर नहीं पड़ता, वरन् जो कुछ भी बोला और सुना जाता है, उसका भिन्न-भिन्न तरह का प्रभाव शरीर पर पड़ता है।

शरीर की संवेदनशीलता परमाणुओं में स्थित सबसे कोमल भाग में कंपन के कारण होती है। वैज्ञानिकों ने पता लगाया है कि शब्द के २०००० बार तक के कंपन को हम सुन सकते हैं, उससे अधिक और २० कंपनों से कम के शब्द को हम नहीं सुन सकते। इसी बीच की ध्वनि में दो तरंगों के बीच में जितना समय लगता है, ध्वनि-तरंगें यदि उसी समय को स्थिर रखकर बराबर प्रवाहित होती रहें, तो शरीर स्थित परमाणुओं के कोमल तंतुओं का आकुंचन-प्रकुंचन (फैलना और सिमटना) होता है, उससे उन कोशों में स्थित भारी अणु अर्थात् रोग और गंदगी के कीटाणु निकलने लगते हैं। समान समय वाले यह कंपन ही संगीत में स्वर कहे जाते हैं। उनका जीवन-विज्ञान से घनिष्ठतम संबंध माना गया है। यदि कोई प्रतिदिन मधुर संगीत सुनता, बजाता, गाता अथवा ताल और गति के साथ नृत्य करता है, तो उसका शरीर अपने दूषित तत्त्व बराबर निकालता रहता है, इस तरह रोगों के कीटाणु भी घुल जाते हैं और शरीर भी स्वस्थ बना रहता है। मन को विश्राम और प्रसन्नता मिलना शरीर के हलकेपन का ही दूसरा नाम है, अर्थात् यही ध्वनि-कंपन आत्मा तक को प्रभावित करने का काम करते हैं।

अमेरिका के पथरी के एक रोगी पर डॉ० पोडोलास्की ने प्रयोग करके देखा कि संगीत की सूक्ष्म ध्वनि-तरंगों के आघात से पथरी के कुछ कण प्रतिदिन टूटकर उससे अलग हो जाते हैं और मूत्र के साथ मिलकर बाहर निकल आते हैं। प्रयोग के दौरान प्रतिदिन मूत्र का परीक्षण किया जाता रहा। देखा गया है कि जिस दिन संगीत का प्रयोग थोड़ी देर हुआ, उस दिन थोड़ी मात्रा में ही पथरी टूटी, जबकि जिस दिन संगीत बिलकुल नहीं बजा, उस दिन के मूत्र-परीक्षण में पथरी का एक भी टुकड़ा नहीं मिला। इसके बाद

यह क्रम बीच में कभी बंद नहीं किया गया, उससे पथरी टूटकर पूरी की पूरी घुल गई।

केलीफोर्निया के एक व्यक्ति की जबान बंद हो गई थी। वह कुछ भी बोल नहीं सकता था। चिकित्सकों ने उसे 'मनोरोगी' कहकर असाध्य ठहरा दिया था, पर ऊपर अमेरिका की जिस संस्था का नाम दिया गया है, एक स्वयं-सेविका ने उसके रिकार्ड दो वर्ष तक लगातार इस व्यक्ति को सुनाए और एक दिन सब लोग यह देखकर आश्चर्यचकित रह गये कि संगीत-ध्वनि के कारण वह इतना आह्लादित हो उठा कि एकाएक उसकी जबान फूट पड़ी और धीरे-धीरे वह सबकी तरह खूब अच्छी तरह बोलने और बातचीत करने लगा।

गायन से फेफड़ों की जो हलकी-हलकी मालिश होती है, वह किसी भी परिश्रम वाले काम की अपेक्षा बहुत कोमल और लाभदायक होती है। दौड़-कुश्ती और कृषि आदि के कामों से भी फेफड़ों का व्यायाम होता है, पर उनमें थकावट होती है, प्रसन्नता नहीं।

डॉ० बर्नर मैकफेडेन ने लिखा है—"गाने से शरीर में जो हलचल उत्पन्न होती हैं, उससे रक्त-संचार में वृद्धि होती है, पाचन क्रिया में सुधार, उदर और वक्षस्थल की मांसपेशियों का प्रसार होता है।" गाने में कंठ-नलिकाएँ और फेफड़े को अनिवार्य रूप से फैलना सिकुड़ना पड़ता है, इसलिए उस समय इन अंगों की नियमित कसरत अवश्य होगी। कसरत कोई भी हो, उस स्थान की गंदगी ही निकालती और उस स्थान की सक्रियता ही बढ़ाती है, इसलिए गायन को बहुत अच्छा व्यायाम कहना चाहिए। गाना प्रत्येक व्यक्ति को चाहिए, उससे वस्ति प्रदेश के सभी अंगों, अवयवों को स्फूर्ति, प्रोत्साहन एवं मालिश का लाभ मिलता है।

लंदन के कुछ अनुभवी डॉक्टर गर्भस्थ-शिशु के लिए संगीत की धुनें बजाकर यह पता लगाने की चेष्टा कर रहे हैं कि

गर्भस्थ-शिशु की श्रवण-शक्ति का विकास किस प्रकार होता है और मधुर-ध्वनियों से स्नायविक प्रणाली पर क्या प्रभाव होता है ?

अनेक गर्भवती स्त्रियों को संगीत की ध्वनियाँ सुनाकर परीक्षण किए गए। २९० में से २८४ बच्चे ऐसे निकले जो सामान्य बच्चों से अधिक स्वस्थ, वजनदार और प्रसन्न मुख थे। जन्म लेने से १४ सप्ताह पूर्व गर्भस्थ-शिशु की श्रवण-शक्ति का विकास हो जाता है और तब वह संगीत-ध्वनियों से अधिक तेजी से प्रभावित होता है। इसलिए वहाँ के डॉक्टरों का यह कथन है कि गर्भवती स्त्रियों को संगीत का अभ्यास अथवा रसास्वादन अवश्य करना चाहिए। जो गा-बजा नहीं सकतीं, उन्हें अच्छे भजन-कीर्तन, भक्ति, करुणा, प्रेम, दया और सेवा के प्रेरक गीत सुनने के लिए कोई साधन अवश्य बनाना चाहिए।

आजकल प्रातःकाल प्रायः सभी भारतीय रेडियो स्टेशनों से भक्ति भावना से ओत-प्रोत भजन प्रसारित किए जाते हैं, जिन घरों में रेडियो, ट्रांजिस्टर हों, उन घरों में प्रातःकाल यह भजन अवश्य सुने जाने चाहिए। उससे कार्यक्षमता भी घटती नहीं, एकाग्रचित्त होने के कारण दूसरे काम भी तेजी से होते हैं और कानों से स्वर लहरियों का आनंद भी मिलता रहता है।

देखा गया है कि शरीर में प्रातःकाल और सायंकाल ही अधिक शिथिलता रहती है, उसका कारण प्रोटोप्लाज्मा की शक्ति का ह्रास है। यों प्रातःकाल शरीर थकावटरहित होता है; पर पिछले दिन की थकावट का प्रभाव आलस्य के रूप में उभरा हुआ रहता है। प्रोटोप्लाज्मा जिससे जीवित शरीर की रचना होती है, इन दोनों समयों में अस्त-व्यस्त हो जाता है। उस समय यदि भारी काम करें, तो शिथिलता के कारण शरीर पर भारी दबाव पड़ता है और मानसिक खीझ और उद्विग्नता बढ़ती है। थकावट में ऐसा हर किसी को होता है। यदि कोई गर्म-गर्म पदार्थ खाये, तो कुछ क्षण के लिए प्रोटोप्लाज्मा के अणु तरंगायित तो होते हैं, पर वह तरंग उस तूफान की तरह तेज होती है, जो थोड़ी देर के लिए सारे पेड़-पौधों को झकझोर कर रख देती है। उसके बाद चारों ओर सुनसान

भयानकता-सी छा जाती है। उत्तेजक पदार्थों के सेवन से दिन में बुद्धि विभ्रम और रात में दुःस्वप्न होता है। शारीरिक प्रोटोप्लाज्मा की प्रकृति में इसी तरह के तूफान का प्रभाव होता है। इसलिए उस समय नशापान स्वास्थ्य को बुरी तरह चौपट करने वाला होता है।

संगीत की लहरियाँ शिथिल हुए प्रोटोप्लाज्मा की उस तरह की हल्की मालिश करती हैं, जिस तरह किसी बहुत प्रियजन के समीप आने पर हृदय में मस्ती और सुहावनापन झलकता है, इसलिए प्रातःकाल का संगीत जहाँ शरीर को स्फूर्ति और बल प्रदान करता है, वहाँ हृदय, स्नायुओं, मन और भावनाओं को भी स्निग्धता से आप्लावित कर देता है। इसलिए प्रातःकाल और सायंकाल दो समय तो प्रत्येक व्यक्ति को गाना, प्रार्थना पुकारना अवश्य चाहिए। सामूहिक कीर्तन और भजन बन पड़े तो और अच्छा, अन्यथा किसी भी माध्यम से सरस और भाव-प्रधान गीत तो इस समय अवश्य ही सुनना चाहिए।

अमेरिका के प्रसिद्ध मानस-चिकित्सक डॉ० जार्ज स्टीवेन्सन और डॉ० विन्सेंट पील ने स्नायविक तनाव दूर करने के लिए जो चार उपाय बताये हैं, उनमें चौथा इस प्रकार है—"इन तीन उपायों (१. क्रोध आये, तो शारीरिक श्रम में लग जाना, २. विपरीत परिणाम या असफलता के समय स्वाध्याय, ३. व्यायाम) की सार्थकता संगीत से संपन्न होती है, इसलिए संगीत साधना को हम सभी मानसिक तनावों के निराकरण की अचूक औषधि भी कहते हैं। संगीत के अभ्यास और श्रवण काल दोनों में मन को विश्रांति ही नहीं, आत्म-प्रसाद भी प्राप्त होता है।

❑ ❑

संगीत की जीवनदात्री क्षमता

▼

पाश्चात्य देशों में पिछले दिनों संगीत द्वारा रोग-निवारण की दिशा में बहुत शोध कार्य हुआ है। तदनुसार ऐसे सूत्र ढूँढ़ निकाले गये हैं कि जिनके सहारे विभिन्न रोगों के रोगियों की चिकित्सा विभिन्न स्वर प्रवाहों और वाद्य यंत्रों की सहायता से की जाती है। इंग्लैंड के डॉक्टर मीड और अमेरिका के एडवर्ड पोडोलास्की ने अपनी लंबी शोध का निष्कर्ष यह बताया कि—संगीत से नाड़ी संस्थान में एक विशेष प्रकार की उत्तेजना उत्पन्न होती है। जिसके सहारे शरीरगत मल-विसर्जन की शिथिलता दूर होती है। मल, मूत्र, स्वेद, कफ आदि मल जब मंद गति से रुक-रुककर निकलते हैं, तो ही विभिन्न प्रकार के रोग उत्पन्न होते हैं। यदि मलों का विसर्जन ठीक तरह होने लगे, तो फिर रोगों की जड़ ही कट जाए। इस संदर्भ में किस मल का विसर्जन आवश्यक है, इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए तदनुरूप गीत-वाद्य की व्यवस्था की जा सके, तो रोगों के निवारण में सहज ही सफलता मिलेगी। संगीत-चिकित्सा का यही आधार है।

सोवियत रूस के अस्पतालों में प्रो० एस० वी० फैकफ ने संगीत के प्रभाव का अन्वेषण करके यह पाया है कि, उस उपचार का प्रभाव नाड़ी संस्थान की विकृतियों पर और मनोविकारों पर बहुत ही संतोषजनक मात्रा में होता है। डॉ० वाल्टर एच० वालसे के अनुसार जुकाम, पीलिया, अपच, यकृत शोथ, रक्तचाप जैसे रोगों की स्थिति में उपयोगी संगीत का अच्छा प्रभाव होता है। जर्मनी के मनःरोग चिकित्सक डॉ० वाल्टर क्यूग का कथन है कि— मनोविकारों के निवारण में संगीत को सफल उपचार के रूप में प्रयुक्त किया जा सकता है।

लंदन की 'हॉस्पिटल एंड हैल्थमैन मैनेजमेंट' नामक पत्रिका में इंग्लैंड के छह अस्पतालों द्वारा 'संगीत का रोगियों पर प्रभाव' विषय पर किए गए प्रयोग-परीक्षणों का विवरण छपा है, जिसमें

बताया गया है कि प्रसूतिगृहों में जच्चा-बच्चा की मनःस्थिति में उत्साह बनाए रहने में संगीत ने बहुत योगदान दिया और अन्य कष्ट पीड़ितों की उदासी दूर करके उनकी जीवनी-शक्ति को रोग-निवारण कर सकने की दृष्टि से अधिक समर्थ बनाया। अमेरिका के डॉक्टर एस० जे० लोडन ने गायकों, वादकों के स्वास्थ्य का परीक्षण करके यह पाया है कि वे दूसरों की अपेक्षा कहीं कम बीमार पड़ते हैं।

संगीत को कभी मनोरंजन का एक साधन समझा जाता था, पर अब वैसी स्थिति नहीं रही। वैज्ञानिकों का ध्यान उसकी जीवनदात्री क्षमता की ओर गया है और उसके शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य की विकृतियों के निराकरण के लिए प्रयुक्त करने के प्रयोग बड़े उत्साहपूर्वक हो रहे हैं।

संगीत-चिकित्सा का प्रचलन अब क्रमशः बढ़ता ही जा रहा है। मनोविकारों के समाधान में उसके आधार पर भारी सफलता मिल रही है। शरीरगत रुग्णता पर नियंत्रण प्राप्त करने में भी निकट भविष्य में संगीत की स्वर लहरियाँ महत्त्वपूर्ण भूमिका प्रस्तुत करने जा रही हैं। इन दिनों गीत-वाद्य का उथला उपयोग मनोरंजन और लोक-रंजन तक सीमित होकर रह गया है। भविष्य में उसे एक कदम आगे बढ़कर मनुष्य की शारीरिक और मानसिक स्वस्थता का संतुलन बनाए रखने का उत्तरदायित्व वहन करना है। उससे आगे उसे आत्मा के महासागर में से उल्लास और आनंद के मणि मुक्तक ढूँढ़कर बाहर लाने हैं।

डॉ० ऐरोल्ड आईवर का एक लेख लंदन की मेडीकल न्यूज-पत्रिका में छपा है, जिसमें उन्होंने संगीत द्वारा स्वास्थ्य-संरक्षण और दीर्घ जीवन की संभावनाओं पर शोधपूर्ण प्रकाश डाला है। उन्होंने कुछ विश्व-प्रसिद्ध गायकों की सूची प्रस्तुत की है और बताया है कि— पूछने पर वे लोग अपने अच्छे स्वास्थ्य का आधार अपनी संगीतप्रिय अभिरुचि को ही बताते हैं। ऐसे लोगों में उन्होंने स्विट्जरलैंड के ८८ वर्षीय पियेरे मोंटी, जर्मनी के ७८ वर्षीय ओट्टो क्लेंपर, इटली के ८० वर्षीय सरकेट वेर्डी के

नाम का विशेष रूप से उल्लेख किया है। इन लोगों ने न केवल सिद्धांत रूप से वरन् प्रयोग-परीक्षणों द्वारा भी यह सिद्ध किया है कि— संगीत को स्वास्थ्य-संवर्धन का एक महत्त्वपूर्ण आधार बनाया जा सकता है और उससे औषधि-उपचार जैसा ही लाभ उठाया जा सकता है।

रूस के क्रीजिया स्वास्थ्य केंद्र ने चिकित्सा में औषधि-उपचार के साथ-साथ संगीत को भी एक उपाय माना है। इस संदर्भ में वहाँ देर से प्रयोग चल रहे हैं, जिनमें उत्साहवर्धक सफलता मिल रही है। अनिद्रा, उदासी, सनक जैसे मस्तिष्कीय रोगों में तो इस उपचार ने औषधि प्रयोग की सफलता को कहीं पीछे छोड़ दिया है।

शरीर पर संगीत का प्रभाव पड़ता है, यह तथ्य स्वीकार करने के साथ-साथ मनोविज्ञानवेत्ताओं का प्रतिपादन यह है कि इस आधार पर मनोविकारों के नियंत्रण पर अधिक और अच्छी सफलता प्राप्त की जा सकती है। सनक और पागलपन के निवारण में संगीत को आवश्यक उपचार क्रम में सम्मिलित करने के लिए जोर दिया जा रहा है।

न्यूयार्क के ख्याति-नामा चिकित्सक डॉ० एडवर्ड पोडोलास्की ने अपने रोगियों को गायन की शिक्षा देकर उनके फेफड़ों को मजबूत बनाने और रक्त संचार को व्यवस्थित बनाने में अच्छी सफलता पाई है। वे कहते हैं—"स्वास्थ्य रक्षा की दृष्टि से संगीत एक बहुत मृदुल और सुखद व्यायाम है; उसका लाभ बाल-वृद्ध, दुर्बल-समर्थ सभी अपने-अपने ढंग से प्राप्त कर सकते हैं।"

एक-दूसरे डॉक्टर वाल्टर एच० वालसे ने जिगर, आमाशय, आतें और गुर्दे की बीमारी पर संगीत का उपयोगी प्रभाव स्वीकार किया है। पाचन और मल-विसर्जन की क्रिया को उत्तेजित और व्यवस्थित करने में उन्होंने संगीत के प्रभाव को स्वीकार किया है।

स्वास्थ्य विशेषज्ञ डा० वर्नर मैकफेडन भी संगीत को उपयोगी व्यायाम मानते थे। डॉ० लीक का कथन है कि, यदि संगीत को एक दैनिक शारीरिक एवं मानसिक आवश्यकता के रूप में स्वीकार

किया जा सके तो मनुष्य जाति का बहुत हित-साधन हो सकता है। दार्शनिक पाइथागोरस ने संगीत की उपयोगिता स्वास्थ्य-संरक्षण, चरित्र-गठन और आत्मिक प्रगति के इन तीनों प्रयोजनों को पूरा कर सकने की तीनों दृष्टियों से स्वीकार किया है।

यूनान के चिकित्सक गोलमन तथा मोरिनन अपने समय के प्रख्यात संगीत चिकित्सक थे। गायन और वाद्य के विविध उतार-चढ़ावों का आश्रय लेकर, कतिपय रोगों के कष्टसाध्य बीमारों को व्यथा-ग्रस्त स्थिति से छुड़ाते थे। सर्प, बिच्छू जैसे विषैले जंतुओं के काटने पर उसके दुष्प्रभाव से मुक्ति दिलाने के लिए अभी भी विशेष वाद्य यंत्रों का प्रयोग किया जाता है।

यूरोप के इतिहास में ऐसे तीन सम्राटों का वर्णन मिलता है, जिन्हें पागलपन की स्थिति से छुटकारा दिलाने में औषधियाँ असफल रहीं, किंतु संगीत ने उस प्रयोजन को पूरा किया। इंग्लैंड के सम्राट् जार्ज तृतीय को अन्यमनस्कता—'मेलेनकोलिया' ने धर दबोचा था, इसी प्रकार इजरायल के शासक साल और स्पेन के बादशाह फिलिप पंचम लगभग पागल ही हो चुके थे। उनकी चिकित्सा कुशल कलावंतों ने संगीत के माध्यम से की, फलस्वरूप उन्हें विपत्ति से छुटकारा भी मिल गया।

सुप्रसिद्ध संगीतकार तानसेन के बारे में यह कहा जाता है कि वे जन्मतः गूँगे थे। सात वर्ष की आयु तक उन्हें बोलना बिलकुल नहीं आता था। उनके पिता मकरंद और माता कालिंदीबाई ने अपने पुत्र के गूँगेपन का उपचार करने के लिए सामर्थ्य भर उपाय कर लिया, पर कोई सफलता न मिली। अंत में एक उपाय कारगर हुआ, उन्हें तत्कालीन मूर्धन्य गायक मुहम्मद गोस की कृपा प्राप्त हुई। वे अपने साथ-साथ तानसेन को भी गाने के लिए प्रोत्साहित करते थे, इस पर बच्चे की वाणी खुली। वह न केवल बोलने ही लगा वरन् मधुर कंठ से गाने भी लगा। मुहम्मद गोस के बारे में कहा जाता है कि उन्होंने अन्य कई कष्टसाध्य रोगों से ग्रसित व्यक्तियों को अपने संगीत की मधुर ध्वनियाँ सुनाने का उपचार करके रोग मुक्त किया था।

उत्तर प्रदेश की रामपुर स्टेट के नवाब के यहाँ सूरजखाँ नामक एक गायक आते थे, उन्होंने संगीत के आधार पर नवाब को लकवे से मुक्ति दिलाई थी। इसी प्रकार उन्होंने अन्य कितने ही रोगी विभिन्न राग-रागनियाँ सुनाकर रोग मुक्त किए थे।

संगीत का मनुष्य जीवन को सरस बनाने में बड़ा महत्त्वपूर्ण स्थान हैं। यदि सगीत का अस्तित्व मिट जाए, तो दुनिया बड़ी ही नीरस, रूखी, और कर्कश प्रतीत होने लगेगी। साधारण पशु की अपेक्षा मनुष्य को जो आनंदमयी स्थितियाँ प्राप्त हैं, उनमें संगीत, साहित्य और कला का बहुत बड़ा भाग है।

जड़ पदार्थ में गति उत्पन्न करने के लिए गर्मी का कार्य प्रधान हैं। अन्य तत्त्वों से भी गति का संचार होता है, परंतु प्रधानता अग्नि तत्त्व की ही है। इसी प्रकार चैतन्य तत्त्वों में जो हलचलें होती हैं, उसके कारण यद्यपि अन्य भी हैं, पर संगीत की उनमें प्रधानता है। प्राणियों के अंदर जो चैतन्य तत्त्व है, वह संगीत के द्वारा गति प्राप्ति करता है, आगे बढ़ता है, विकसित होता है।

वैज्ञानिक खोज से प्रतीत होता है कि अदृश्य झंकृति के संगीतमय कंपन्न की प्रेरणा से ही समस्त सृष्टि का काम चल रहा है; यदि यह संगीत बंद हो जाए, तो प्रलय में तनिक भी विलंब न समझना चाहिए। संगीत द्वारा सृष्टि-संचालन के सिद्धांत को आधुनिक वैज्ञानिकों ने ही ढूँढ़ निकाला है, ऐसी बात नहीं है, भारतीय तत्त्वदर्शी आचार्य इन सब बातों को चिर प्राचीन काल से अनुभव करते आ रहे हैं। योग की दिव्य दृष्टि द्वारा उन्होंने ढूँढ़ा कि सृष्टि को कौन चलाता है ? उन्हें मालूम हुआ कि पंचतत्त्वों से ऊपर की भूमिका में एक घंटा नाद के समान झंकृत हो रहा है, उसके कंपनों की प्रेरणा से विश्व में गतिविधि जारी हैं। पंचतत्त्व जड़ है, इसलिए वे स्वेच्छापूर्वक निरंतर ऐसी प्रेरक गति अविचल रूप से सदैव जारी नहीं रख सकते, अतएव यह कार्य किसी चैतन्य और नित्य शक्ति का होना चाहिए। गुण के अनुसार नाम रखा जाता है। जैसे जिसमें शूरवीरता होती है, उसे 'बहादुर', जो अंटसंट बकता है उसे 'पागल' और जो चिकित्सा करता है—उसे 'वैद्य' कहते

हैं। उसी प्रकार उस संचालक, चैतन्य, नित्य, ईश्वर सत्ता का नामकरण करने के लिए भी ऋषियों को उसके गुण का आश्रय लेना पड़ा। घड़ियाल में चोट मार देने के बाद जो बहुत देर तक झंकृति होती है, उस झंकृति का उच्चारण करीब-करीब "ओं˜˜˜ म्" जैसा होता है। सृष्टि-संचालन शब्द भी इसी प्रकार का है। इसलिए उसका नाम ॐ रखा गया। ॐ अक्षर का प्राचीन-कालीन रूप स्वास्तिक (卐) था। अब उसकी बनावट में सुधार हो जाने के कारण "(卐)" को "ॐ" लिखा जाने लगा है। योगाभ्यास में कान बंद करके दिव्य कर्णेंद्रिय से 'अनहद नाद' सुनने की जो साधना है, उसका तात्पर्य अपनी चेतना को सूक्ष्म परमात्म-तत्त्व के निकटवर्ती प्रदेश तक पहुँचा देना है।

घड़ी के पेंडुलम की तरह हृदय की धड़कन अपना ताल-ठेका अलग ही बजाती है। लप, डप, का क्रम तारबर्की की गर् गट्ट की समता करता है। इस तारबर्की से नस-नस का, पुर्जे-पुर्जे का संचालन होता है। डॉक्टर लोग स्टेथोस्कोप यंत्र लगाकर इस तारबर्की के संगीत की परीक्षा करते हैं कि कहीं यह संगीत बेसुरा तो नहीं हो रहा है, वे जानते हैं कि जरा-सा बेसुरापन आते ही नाना प्रकार के रोगों का उपद्रव उठ खड़ा होगा। चतुर संगीतज्ञ की आँखों में पट्टी बाँधकर सितार सुनाया जाए तो वह उसके बेसुरेपन को सुनकर यह बता देगा कि इस बाजे के अमुक तार में अमुक प्रकार की खराबी है। इसी प्रकार से हृदय की धड़कन या नाड़ी की धड़कन का अनुभव करके, उसके बेसुरेपन के आधार पर चिकित्सक लोग यह बताते हैं कि शरीर के किस पुर्जे में क्या खराबी आ गई है, क्या रोग हो गया है ?

पशु-पक्षी और पौधों का संगीत प्रेम

▼

मनुष्यों तक ही संगीत का प्रभाव सीमित नहीं है, वरन् उसे पशु-पक्षी भी उसी चाव से पसंद करते हैं और प्रभावित होते हैं। संगीत सुनकर प्रसन्नता व्यक्त करना और उसका आनंद लेने के लिए ठहरे रहना यही सिद्ध करता है कि वह उन्हें रुचिकर एवं उपयोगी प्रतीत होता है। अन्य जीवों की जन्मजात प्रवृत्ति यही होती है कि उनकी स्वाभाविक पसंदगी उनके लिए लाभदायक ही सिद्ध होती है। पशु-पक्षियों पर संगीत का अच्छा प्रभाव देखते हुए इसी निष्कर्ष पर पहुँचना पड़ता है कि वह मनुष्यों की तरह अन्य जीवों के लिए भी न केवल प्रिय, वरन् उपयोगी भी है।

पशु मनोविज्ञानी डॉ० जार्जकेरवित्स ने छोटे जीव-जंतुओं की शारीरिक और मानसिक स्थिति पर पड़ने वाले प्रभाव का लंबे समय तक अध्ययन किया है। घर में बजने वाले पियानों की आवाज सुनकर चूहों को अपने बिलों में शांतिपूर्वक पड़े हुए उन्होंने कितनी ही बार देखा है। बेहिसाब उछल-कूद करने वाली चूहों की चांडाल चौकड़ी मधुर वाद्य यंत्र सुनकर किस प्रकार मंत्र-मुग्ध होकर चुप हो जाती है ? यह देखते ही बनता है।

दुधारू पशुओं को दुहते समय यदि संगीत-ध्वनि होती रहे तो वे अपेक्षाकृत अधिक दूध देते हैं।

सील मछली का संगीत-प्रेम प्रसिद्ध है। कुछ समय पूर्व पुर्तगाल के मछुवारे अपनी नावों पर वायलिन बजाने की व्यवस्था बनाकर निकलते थे। समुद्र में दूर-दूर तक वह ध्वनि फैलती तो सील मछलियाँ सहज ही नाव के इर्द-गिर्द इकट्ठी हो जातीं और मछुवारे उन्हें जाल में पकड़ लेते।

घरेलू कुत्ते संगीत को ध्यानपूर्वक सुनते और प्रसन्नता व्यक्त करते पाए जाते हैं। वन विशेषज्ञ जार्ज ह्वस्हे ने अफ्रीका के कांगो देश में चिंपाजी तथा गुरिल्ला वनमानुष को संगीत के प्रति सहज ही

आकर्षित होने वाली प्रकृति का पाया है। उन्होंने इन वानरों से संपर्क बढ़ाने में मधुर-ध्वनि वाले टेप-रिकार्डरों का प्रयोग किया और उनमें से कितनों को ही पालतू जैसी स्थिति का अभ्यस्त बनाया। नार्वे के कीट विज्ञानी डॉ० हडसन शहद की मक्खियों को अधिक मात्रा में शहद उत्पन्न करने के लिए संगीत को अच्छा उपाय सिद्ध किया है। अन्य कीड़ों पर भी वाद्य यंत्रों के भले-बुरे प्रभावों का उन्होंने विस्तृत अध्ययन किया है और बताया है कि कीड़े भी संगीत से बिना प्रभावित हुए नहीं रहते।

ह्यूज फ्रेयर ने जुलूलेंड फार्म हाउस की एक घटना का विवरण छपाया है, जिसके अनुसार एक महिला वायलिन-वादक को उस जंगल की झोंपड़ी में दो भयंकर सर्पों का सामना करना पड़ा था और वह मरते-मरते बची थी। बात यों ही कि उसे आधी रात बीत जाने पर भी नींद न आई, तो उठकर वायलिन बजाने लगी; इतने में कोबरा सर्पों का एक अधेड़ जोड़ा उस स्वर लहरी पर मुग्ध होकर घर में घुस आया और फन फैलाकर नाचने लगा। वादन में व्यस्त महिला को पहले तो कुछ पता न चला, पर जब उसे छायाएँ लगातार हिलती-डुलती दीखीं, तो उसने पीछे मुँह मोड़ कर देखा और पाया कि दोनों सर्प मस्ती के साथ संगीत पर मुग्ध होकर लहरा रहे हैं।

महिला एक बार तो काँप उठी, परंतु उसने विवेक से काम लिया और खड़े होकर वायलिन बजाती हुई उलटे पैरों दरवाजे की ओर चलने लगी। दोनों साँप भी साथ चल रहे थे। दूसरे कमरे में उसका पति सो रहा था। वहाँ उसने जोर से वायलिन बजाया—वह जगा। इशारे में महिला ने वस्तुस्थिति समझाई। पति ने बंदूक भरी और किवाड़ों के पीछे निशाना साधकर बैठा। साँप जब सीध में आ गये, तब उसने गोली चलाई; एक तत्काल मर गया और दूसरा घायल हो गया, तब कहीं उस काल-रज्जु के रूप में आए हुए मृत्यु से महिला का पीछा छूटा।

भीलवाड़ा राजस्थान के एक गाँव सलेमपुर का समाचार है, कि वहाँ का निवासी एक युवक ट्रांजिस्टर बजाता हुआ गाँव लौट

रहा था तो संगीत की ध्वनि से मोहित एक सर्प पीछे-पीछे चलने लगा। बहुत दूर साथ चलने पर जब साँप का आभास युवक को हुआ तो वह डर गया और ट्रांजिस्टर पटककर भागा। सर्प ट्रांजिस्टर के निकट बैठा रहा-जब तक कि संगीत बजता रहा। बंद होने पर चला गया। पीछे सर्प की लकीर देखने से प्रतीत हुआ कि वह एक मील तक इस संगीत श्रवण के लिए पीछे-पीछे चला आया था।

गोंटिंगन (पूर्वी-जर्मनी) से प्रकाशित एक पत्रिका में संगीत चिकित्सक डॉ० एन० शूलीवान ने लिखा है—"दुःखती आँखों में संगीत प्रसन्नता की चमक पैदा कर देता है। मैंने ऐसे कुत्ते और बिल्ली देखे हैं, जो लोमवाद्यों के साथ थिरकने लगे हैं। यदि मनुष्येत्तर प्राणियों के जीवन-स्पंदन को संगीत की सामर्थ से मोड़ा जा सकता है, तब तो मनुष्य जैसे भावनाशील प्राणी पर उसके प्रभाव का तो कहना ही क्या ?"

कोई ३७ वर्ष पूर्व लखनऊ के एक वैज्ञानिक डॉक्टर टी० एम० सिंह ने स्लाइडों के द्वारा यह प्रमाणित करने का प्रयत्न किया था कि, गायें, भैंसें, संगीत सुनकर अधिक दूध देने लगती हैं। कटक और दिल्ली के कृषि अनुसंधान केंद्रों में भी ऐसे प्रयोग और परीक्षण हुए हैं और यह देखा गया है कि— संगीत का प्रभाव पेड़-पौधों तक में उत्पादन शक्ति के रूप में होता है। कोयंबटूर के सरकारी कॉलेज में भी इसी प्रकार के परीक्षण चल रहे हैं। विदेशों से ऐसे समाचार मिल रहे हैं, जिनमें दावा किया जाता है कि राग-रागनियों का प्रभाव गन्ने, धान, शकरकंद, नारियल आदि पर भी पड़ता है। उत्तर भारत में अभी भी धान की रोपाई के लिए विशेष रूप से गाँव की उन स्त्रियों को ले जाया जाता है, जो अच्छे और मधुर-स्वरों में गीत गा सकती हों और फिर सामूहिक स्वरों में गीत गाते हुए धान की रोपाई की जाती है। ऐसे खेतों में और खेतों की अपेक्षा फसल अच्छी तैयार होती है।

डॉ० सिंह ने दस वर्ष तक एक बाग को दो हिस्सों में बाँटकर एक परीक्षण किया। एक हिस्से के पौधों को वायलिन बजाकर गीत

सुनाया जाता, दूसरे को खाद, पानी, धूप की सुविधाएँ तो समान रूप से दी गईं; किंतु उन्हें स्वर-माधुर्य से वंचित रखकर दोनों का तुलनात्मक अध्ययन किया। जिस भाग को संगीत सुनने को मिला उसके फूल-पौधे सीधे, घने, अधिक फूल, फलदार सुंदर हुए। उनके फूल अधिक दिन तक रहे और बीज-निर्माण द्रुतगति से हुआ। डॉ० सिंह ने बताया कि वृक्षों में प्रोटोप्लाज्मा गड्ढे भरे द्रव की तरह उथल-पुथल की स्थिति में रहता है। संगीत की लहरियाँ उसे उस तरह लहरा देती हैं, जिस तरह वेणुनाद सुनकर सर्प प्रसन्नता से झूमने और लहराने लगता है। मनुष्य शरीर में भी ठीक वैसी ही प्रतिक्रिया होती है। गन्ना, चावल, शकरकंद जैसे मोटे अनाजों पर जब संगीत अपना चिरस्थायी प्रभाव छोड़ सकता है, तो मनुष्य के मन पर उसके प्रभाव का तो कहना ही क्या ?

गन्ना, धान, शकरकंद, नारियल आदि के पौधों और पेड़ों के विकास पर क्रमबद्ध संगीत का उत्साहपूर्वक प्रभाव पड़ता है। यह प्रयोग भारत के एक कृषि विज्ञानी संगीतकार डॉक्टर टी० एन० सिंह ने कुछ समय पूर्व किया था। कोयंबटूर के सरकारी कृषि कालेज के अन्वेषण ने पौधों पर संगीत के अनुकूल प्रभाव की रिपोर्ट दी है।

कनाडा के किसान अपने खेतों के चारों ओर लाउडस्पीकर लगाकर रखते हैं, उनका संबंध रेडियो से जोड़ दिया जाता है और संगीत कार्यक्रम प्रसारण कर दिया जाता है। देवातोसा (विस्कान्सिन) संगीत शक्ति के व्यापक शोधकर्ता श्री आर्थरलाकर का कहना है कि संगीत से जिस तरह पौधों को रोगाणुओं से बचाया जा सकता है, उसी प्रकार मनुष्यों की रोग-निरोधक शक्ति का विकास भी किया जा सकता है।

ये घटनाएँ देखकर नारद संहिता का वह श्लोक याद आ जाता है, जो भगवान् विष्णु ने नारद जी से कहा था—

खगाः भृंगाः पतंगाश्च कुरश्चाद्यापिजन्तवः।
सर्व एव प्रगायन्ते गीतव्याप्तिर्दिगन्तरे।।

हे नारद ! पक्षी, भौंरे, पतंगे, हिरण आदि जीव-जंतुओं को भी संगीत से प्रेम होता है। संगीत से संसार का कोई भी स्थान रिक्त नहीं, अर्थात् संगीत एक सर्वव्यापी ईश्वरीय तत्त्व है और वह परमात्मा के समान ही संपूर्ण संसार को शारीरिक, मानसिक और आत्मिक आरोग्य प्रदान करता है।

मनुष्य, पशु-पक्षी कीड़े-मकोड़े ही नहीं, वृक्ष-वनस्पतियों पर भी संगीत का उपयोगी प्रभाव पड़ता है। इतना ही नहीं समस्त चेतना-सृष्टि की तरह जड़-सृष्टि भी उससे प्रभावित होती है। इन्हीं तथ्यों के आधार पर संगीत को विश्व का प्राण कहा गया है।

❐❐

संगीत कलाविहीनः साक्षात् पशु पुच्छहीनः

▼

'संगीत-कला-विहीन मनुष्य पुच्छहीन पशु की तरह है।' उपर्युक्त श्लोक में एक तरह से संगीत के प्रति श्रद्धा और प्रेम रखने वाले व्यक्ति की निंदा की गई है, पर ऐसा लगता है कि श्लोककार ने यह पंक्तियाँ लिखते हुए यह ध्यान नहीं दिया कि संगीत एक ऐसी वस्तु है, पशु-पक्षी भी जिसके प्रति अपार आदर और प्रेम रखते हैं।

फ्रान्सीसी लेखक पेलीसन को एक बार किसी अपराध में पकड़कर जेल भेज दिया गया। अपने जेल-जीवन का एक रोमांचकारी संस्मरण प्रस्तुत करते हुए श्री पेलीसन ने लिखा है—"एक दिन जब मैं अपनी बाँसुरी बजाने में मग्न था, तब मैंने देखा, जाले के भीतर से एक मकड़ी निकली और बाँसुरी के स्वर-तालों के साथ ऐसे घूमने लगी, मानो वह नृत्य करना चाहती हो। मैंने उस दिन से अनुभव किया कि संगीत कोई ऐसी शक्ति है, जो प्रधानतया शरीर में रहने वाली चेतना से संसर्ग करती है, तभी तो सृष्टि का इतना तुच्छ जीव भी उसे सुनकर फड़क उठता है।"

संगीत एक पराशक्ति है और उसे प्रयोग करने के विविध उपायों का नाम है—"शास्त्रीय संगीत"। संगीत से मनुष्य की किसी भी भावना को उत्तेजित किया जा सकता है और समाज में व्यवस्था स्थापित की जा सकती है।

मियामी विश्वविद्यालय, अमेरिका के वैज्ञानिक डॉ० जे० डी० रिचार्डसन ने समुद्री मछलियों को पकड़ने के लिए एक विशेष संगीत-ध्वनि का आविष्कार किया है। उनका कहना है कि समुद्र के किनारे चारा लगी बंसियाँ डाल दी जाएँ और फिर वह स्वर बजाया जाए, तो सुनने के लिए सैकड़ों की संख्या में मछलियाँ दौड़ी चली आती हैं। उससे इस सिद्धांत की पुष्टि अवश्य होती है कि संगीत विश्व की एक आध्यात्मिक सत्ता है। संसार का प्रत्येक जीवधारी उसे पसंद करता है। मनुष्य को तो मानवीय सद्भावनाओं के उत्प्रेरण में उसका सदुपयोग करना ही चाहिए।

समुद्र में पाया जाने वाला शेर्रों जंतु तो संगीत की स्वर लहरियों पर इतना आसक्त हो जाता है कि यदि उसे कहीं से

मधुर स्वर सुनाई दे जाए, तो वह अपने जीवन की चिंता किए बिना प्राकृतिक प्रकोप और अवरोधों को भी पार करता हुआ वहाँ पहुँचेगा अवश्य। पाश्चात्य देशों में विद्युत् से बजने वाला एक ऐसा यंत्र बनाया गया है, जिसकी स्वर-तरंगें सुनकर मच्छर दौड़े चले आते हैं और उस यंत्र से टकरा-टकराकर ऐसे प्राण होम देते हैं, जैसे दीपक की ज्योति पर पतंगे प्राण अर्पण कर देते हैं।

अभी कुछ दिन पूर्व न्यूयार्क मेट्रोपोलिटन (म्यूनिस्पैलिटी की तरह नगर प्रशासक संस्था को मेट्रोपोलिटन कहते हैं, यह बड़े-बड़े नगरों में जैसे दिल्ली आदि में होती है) के संग्रहालय ने अफगानिस्तान के डॉ० एम० फरीदी से १८ हजार पौंड में एक पुस्तक खरीदी है। यह पुस्तक एक भारतीय सूफी संत ख्वाजा फरीदुद्दीन खट्टर द्वारा लिखी गई है। उसका नाम है—"संत कुबेर"। इस पुस्तक में लिखा है कि, संसार के सैकड़ों जीव विधिवत् गाते भी हैं। उनके द्वारा गाए जाने वाले गीत भी ३६२ पृष्ठों वाली इस पुस्तक में दिए हैं। इस पुस्तक की दो प्रतियाँ—एक काश्मीर में, दूसरी वाराणसी में उपलब्ध बताई जाती है।

जापान में कई संपन्न व्यक्तियों के पास विभिन्न जीव-जंतुओं का रिकार्ड किया हुआ संगीत उपलब्ध है। जब किसी सार्वजनिक उत्सव या किसी विदेशी अभ्यागत का स्वागत होता है, तो उसे सुनाया भी जाता है। मादा मेंढक जब प्रसवकाल में होती है, तो वह बड़े मधुर स्वर में गाती है। कहते हैं कि गर्भिणी मेंढक का विश्वास होता है कि गाने से उसका प्रसव बिना कष्ट के होगा, साथ ही पैदा होने वाला नया मेंढक भी स्वस्थ और बलवान् होगा। इस किंवदती में कितना अंश सच है, यह तो निश्चित नहीं कहा जा सकता, किंतु मनुष्य के बारे में यह निर्विवाद सत्य है कि गर्भावस्था में माता के हाव-भाव और विचारों का गर्भस्थ बालक पर प्रभाव पड़ता है। यदि गर्भवती स्त्री को नियमित रूप से संगीत सुनने को मिले, तो उससे न केवल प्रसवकाल का कष्ट कम किया जा सकता है, वरन् आने वाली संतति को भी शारीरिक, मानसिक तथा आत्मिक दृष्टि से दृढ़ और बलवान् बनाया जा सकता है।

प्रसव के तत्काल बाद "सोहर" संगीत गाने की भारतीय लोक जीवन में अभी भी व्यवस्था है। वह इस बात की प्रतीक है

कि— यदि बच्चा बुरे संस्कार को भी लेकर आया है, तो यदि उसे संगीत के प्रभाव में रखा जाए तो पूर्व-जन्मों के असत् और दूषित संस्कारों का पूर्ण प्रच्छालन किया जा सकता है।

कहते हैं तानसेन जिन दिनों अपने गुरू संत हरिदास के पास संगीत विद्या का अभ्यास कर रहे थे, एक दिन वह जंगल गये। उन्होंने देखा एक वृक्ष पर अग्नि जलती है और फिर बुझ जाती है। अग्नि के जलने और बुझने की यह घटना तानसेन ने आश्रम में आकर गुरुदेव को सुनाई और उसका रहस्य पूछा। स्वामी हरिदास ने बताया—उस वृक्ष पर एक ऐसा पक्षी रहता है, जिसके कंठ से निकले हुए स्वर-कंपन 'दीपक राग' के स्वर कंपनों के समान है। जिस तरह कोयल एक विशेष लय में कुहू-कुहू गाती है, पपीहरा एक आहत ध्वनि प्रसारित करता है, उसी तरह जब वह चिड़िया सहज बोलती है, तो वह स्वर लहरियाँ फूटती हैं, उसी से अग्नि जलती है और बुझती है। इस विशेष घटना से ही प्रेरित होकर तानसेन ने "दीपक राग" का मनोयोगपूर्वक अभ्यास कर उसमें सिद्धि प्राप्त की।

देखने-सुनने में यह घटनाएँ अतिरंजित होती हैं, पर जो लोग शब्द और स्वर विज्ञान को जानते हैं, उन्हें पता है कि प्राकृतिक परमाणुओं में अग्नि आदि तत्त्व नैसर्गिक रूप में विद्यमान हैं, उन्हें शब्द-तरंगों के आघात द्वारा प्रज्ज्वलित भी किया जा सकता है। आज पाश्चात्य देशों में शब्द-शक्ति के द्वारा जो आश्चर्यजनक कार्य हो रहे हैं, वह सब स्वर-कंपनों पर ही आधारित हैं और उनमें वहाँ कई प्रकार की औद्योगिक क्रांतियाँ उठ खड़ी हुई हैं। हम उधर ध्यान न दें, तो भी इन आख्यानों को पढ़कर यह तो पता लगा ही सकते हैं कि जीव-मात्र में फैली हुई आत्म-चेतना आनंद प्राप्ति के एक सर्वमान्य लक्ष्य से बँधी हुई है। उस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए योग-साधनाएँ कठिन हो सकती हैं; पर स्वरों की कोमलता और लयबद्धता में कुछ ऐसी शक्ति है कि वह सहज ही में आत्मा को ऊर्ध्वमुखी बना देती है। उससे शारीरिक, मानसिक लाभ भी है, पर आत्मोत्थान का लाभ सबसे बड़ा है, संगीत-कला का उपयोग उसी में किया भी जाना चाहिए।

❑❑

शब्द-ब्रह्म और उसकी नाद साधना

ध्वनि (साउंड) एक निश्चित भौतिक प्रक्रिया है और जिस प्रकार प्रकृति और प्राणि जगत् में प्रकाश और गर्मी का प्रभाव होता है, उससे उनके शरीर बढ़ते, पुष्ट और स्वस्थ होते हैं। उसी प्रकार ध्वनि में भी तापीय और प्रकाशीय ऊर्जा होती है और वह प्राणियों के विकास में इतना महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है, जितना अन्न और जल। पीड़ित व्यक्ति के लिए तो संगीत उस रामबाण औषधि की तरह है, जिसका श्रवण-पान करते ही तात्कालिक शांति मिलती है।

लोग कहेंगे— यह भावुक अभिव्यक्ति मात्र है; किंतु वैज्ञानिकों और शोधकर्ताओं ने संगीत की उन विलक्षण बातों का पता लगाया है, जो मनुष्य-शरीर में शाश्वत चेतना को और भी स्पष्ट प्रमाणित करती हैं।

इस संबंध में अन्नामलै विश्वविद्यालय में वनस्पतिशास्त्र के विभागाध्यक्ष डॉ० टी० सी० एन० सिंह और उनकी सहयोगिनी कुमारी स्टेला पुनैया के वनस्पति और प्राणियों पर किए गए संगीत के परीक्षण बहुत उल्लेखनीय हैं। सच बात तो यह है कि— ईश्वर, आत्मा, जीवन-व्यवस्था, समाज-व्यवस्था पर अनेक लोग, अनेक जातियों के अनेक मत हो सकते हैं; किंतु संगीत की उपयोगिता और सम्मोहिनी शक्ति पर किसी देश के किसी भी व्यक्ति को विरोध नहीं। शायद ही कोई ऐसा अपवाद हो, जिसे संगीत वाद्य और नृत्य अच्छे न लगते हों। मानव का संगीत के प्रति स्वाभाविक प्रेम ही इस बात का प्रमाण है कि वह कोई नैसर्गिक तत्त्व और प्रक्रिया है।

उपनिषद् कहते हैं—

ब्रह्मप्रणवसंधान नादो ज्योतिर्मयः शिवः स्वयमाविर्भ-वेदात्मा मेधापायेऽशुमानिव सिद्धासने स्थितो योगी मुद्रां संधाय वैष्णवीम् श्रृणुयाद्दक्षिणे कर्णे नादमन्तर्गतं सदा अभ्यस्यमानो

नादोऽयं बाह्यामावृणुते ध्वनिम् पक्षाद्विपक्षमखिलं जित्वा तुर्यपदं व्रजेत्।
—नादबिंदूपनिषद् ३०।३१।३२

वत्स ! आत्मा और ब्रह्म की एकता का जब चिंतन करते हैं, तब कल्याणकारी ज्योतिस्वरूप परमात्मा का नाद रूप में साक्षात्कार होता है। यह संगीत-ध्वनि बहुत मधुर होती है। योगी को सिद्धासन से बैठकर वैष्णवी मुद्रा धारण कर अनाहत ध्वनि को सुनना चाहिए। इसे अभ्यास से बाहरी कोलाहल शून्य होकर अंतरंग तुर्य पद प्राप्त होता है।

उपरोक्त कथन में संगीत और ब्रह्म का सायुज्य प्रतिपादित किया गया है, इसलिए उसके अभ्यास से निःसंदेह मानव-आत्मा में उन शक्तियों और गुणों का विकास संभव है, जो परमात्मा में हैं। "जीवन भर जीवित बने रहिए" (स्टे अलाइव आल योर लाइफ) के लेखक नार्मन बिन्सेंट पील नामक विद्वान् ने इस पुस्तक में मृत्यु के उपरांत जीवन की शास्त्रीय पुष्टि के अनेक महत्त्वपूर्ण उद्धरण दिए हैं—उन्होंने लिखा है कि "मुझे एक नर्स ने, जिसने अनेक व्यक्तियों को मरते देखा था, बताया कि— मृत्यु के क्षणों में जीव को कुछ अलौकिक दर्शन और श्रवण होता है। कुछ मरने वालों ने बताया कि उन्हें आश्चर्यजनक ज्योति और संगीत सुनाई दे रहा है।"

यह दो उद्धरण संगीत को जीवन का शाश्वत उपादान ही प्रमाणित करते हैं, पर प्रश्न यह हो सकता है, साधारण गायक और श्रोता, नृत्य या अभिनय द्वारा अपनी चेतना को लय में बाँधने वाले उस असीम सुख को प्राप्त क्यों नहीं करता ? दरअसल यह विषय मन की तन्मयता से संबंधित है, पर उतनी तन्मयता न हो, तो भी संगीत का मनुष्य के मस्तिष्क, हृदय और शरीर पर विलक्षण प्रभाव अवश्य होता है और उससे मूल चेतना के प्रति आकर्षण और अनुराग ही बढ़ता है। नास्तिक स्वभाव से जितने रूखे और कटु होते हैं, यह एक विलक्षण सत्य है कि उन्हें संगीत से उतना ही और कम प्रेम होता है। कला के प्रति अनुराग ही अध्यात्म की प्रथम सीढ़ी है, ऐसे व्यक्ति में भावनाएँ होना स्वाभाविक ही है।

शब्द ब्रह्म—नाद ब्रह्म

▼

कवींद्र रवींद्रनाथ ठाकुर ने कहा है—"संगीत का मूल तत्त्व अतींद्रिय और अति मानवी है। दैनिक जीवन के घटना-क्रम में बँधी हुई अंतःचेतना को वह मुक्ति की अनुभूति तक ले जाता है। क्या गायक, क्या स्रोता—दोनों ही उन क्षणों में वैराग्य की उस भूमिका के समीप जा पहुँचते हैं, जिसे ब्रह्मांड की नींव के रूप में तत्त्ववेत्ताओं ने जाना है।"

महाकवि होमर कहते थे—असह्य मनो-व्यथा का समाधान या तो रुदन-क्रंदन में होता है या फिर संगीत के गुंजन में।

भारतीय तत्त्ववेत्ता संगीत की गणना मानव-जीवन की महती आवश्यकताओं में करते रहे हैं। उन्होंने इस विभूति से वंचित लोगों को पूँछरहित पशु की संज्ञा में गिना है।

साहित्य संगीत कलाविहीनः।
साक्षात् पशुः पुच्छ-विषाणहीनः।।

संगीत, साहित्य और कला से रहित मनुष्य बिना पूँछ का साक्षात् पशु है।

खगाः भृंगाः पतंगांश्च कुरगाद्यपि जन्तवः।
सर्व एव प्रगायन्ते गीतव्याप्तिर्दिगंतरे।।

—नारद संहिता

पक्षी, भ्रमर, पतंगे, मृग आदि जीव-जंतु तक गायन करते रहते हैं। गीत ब्रह्मांडव्यापी है।

संगीत मनुष्यों की ही नहीं, सृष्टि के समस्त प्राणधारियों की संपदा है। वे सभी अपने-अपने ढंग से उसका उपयोग करते हैं।

सृष्टि का सूक्ष्म निरूपण करने वाले तत्त्ववेत्ताओं ने बतलाया है कि, परा-प्रकृति के अंतराल में, महदाकाश में—अनाहत स्वर की थरथराहट उत्पन्न होती है और उस आदिस्वर-सूर्य के भी सात अश्व गतिशील होते हैं। सूर्य के रथ में सात रंग के सात घोड़े जुड़े

हैं। स्वर ब्रह्म भी महदाकाश का नाद-ब्रह्म है। जब वह अक्षर से क्षर बनता है तो उसकी परिणति सात-विखंडों में, सप्त-स्वरों में दृष्टिगोचर होती है। प्रकृति और पुरुष का अनवरत संयोग-संभोग, आघात-प्रत्याघातों के रूप में स्वसंचालित पेंडुलम की गति से नियत निर्धारित क्रम से चलता रहता है। इसी से ब्रह्मांड की घड़ी के समस्त कल-पुर्जे घूमते हैं और विश्वव्यापी विभिन्न हलचलें गतिशील होती हैं।

भौतिक-विज्ञानी कायिक-हलचलों के कारण स्वर उद्रेक का अस्तित्व बताते हैं। आत्म-विज्ञानी कहते हैं—शब्द विश्व का मूल है—विभिन्न हलचलें उसकी प्रतिक्रिया मात्र हैं। क्रिया कौन ? प्रतिक्रिया कौन ? इसका निर्णय न भी हो सके, तो भी इतना तो मानना ही पड़ेगा कि दोनों परस्पर अविच्छिन्न हैं। एक का आधार टूटने पर दूसरा भी स्थिर न रह सकेगा। जीवन का अंत होने पर स्वर समाप्त होगा अथवा स्वर की तालबद्ध स्थिति में अंतर आने पर रुग्णता पीछे पड़ेगी और उसमें विकृति आ जाने पर मरण ही सम्मुख आ उपस्थित होगा। आयुर्वेद-विज्ञानी रोग-निदान के लिए नाड़ी-परीक्षा करते हैं, उसे रक्त-संचार की हलचल समझने मात्र की बात नहीं मानना चाहिए। सितार के तारों पर उँगली रखकर उसकी झंकृति की अनुभूति की जाती है, उसी प्रकृति नाड़ी संचार के साथ चल रहे, स्वर-प्रवाह की स्थिति देखकर भी काय-प्रकृति की सूक्ष्म स्थिति का अन्वेषण किया जाता है।

मनुष्य के अंतरंग की सरसता जब हुलसती है, तो उसे गायन के लिए बाध्य करती है। गान आत्मा की कला है, न कि कंठ की विशेषता। आवश्यक नहीं कि गायक को मयूर-कंठ या कोकिला कंठी ही होना चाहिए।

भावनाओं का उद्रेक जब गतिक्रम और लयक्रम से प्रस्फुटित होता है, तो उसे गायन के रूप में उभरता देखा जाता है। गीत—भावपूर्ण ही हो—यह आवश्यक नहीं। शब्दों में अनगढ़ होते हुए भी गान अपनी विविध अभिव्यक्तियाँ प्रकट करता हुआ गुंजित

रह सकता है, भले ही उसे कोई दूसरा सुनने के लिए मौजूद या तत्पर न हो।

भगवान् का नाम यों किसी भी प्रकार के शब्दोचार से लिया जा सकता है, पर यदि उसे गीत-वाद्य के साथ लिया जाए तो शास्त्रकारों के मतानुसार उसका प्रभाव "साम-श्रुति-गान" के समान अत्यंत ही प्रभावोत्पादक होता है।"

विष्णोर्नामानि पुण्यानि सुस्वरै रन्वितानि चेत्।
भवन्ति सामतुल्यानि कीर्तितानि मनीषिभिः।।

—संगीत पारिजात

यदि ताल सहित स्वर भगवान् का नाम गाया जाय तो वह साम-गान की तरह फलप्रद होता है।

संगीत के आदि इतिहास पर दृष्टि डालें, तो वह विनय, भक्ति, करुणा और ममत्व की अनुभूतियों के साथ उद्भूत हुआ प्रतीत होगा। ईश्वर-भक्ति के पीछे उदात्त प्रेम की—आत्मार्पण की, लय तादात्म्य की धारा बहती दिखाई देगी। संगीत का आदि उद्गम भी इसी स्रोत के सन्निकट है। कला की उत्कृष्टता ही कालजयी बनती है। संगीत को विलास और विनोद का माध्यम बनना जरूर पड़ा, पर वस्तुतः उसकी मूल सत्ता वैसी है नहीं। आत्मा की अभिव्यंजना ने ही क्रमशः संगीत की शाखा-प्रशाखाओं के रूप में विकास किया है।

वेदकाल के ऋषियों से लेकर अद्यावधि भक्तजनों ने अपनी अनुभूतियाँ प्रायः छंदबद्ध रूप में ही विनिर्मित की हैं। भक्तिकाल के प्रायः सभी साधनारत महामानव या तो कविताएँ रचते रहे हैं या फिर छंद-स्वरों में भगवान् के गुणानुवाद गाते रहे हैं। महर्षि नारद से लेकर सूर, तुलसी, मीरा, कबीर तक वही परंपरा क्रमबद्ध शृंखला के रूप में चली आई है।

वीणा-पुस्तकधारिणी भगवती सरस्वती के दो उपकरणों में शब्द-शास्त्र का विभाजन है। उनके एक हाथ में वीणा और दूसरे में पुस्तक है। उन्हें ज्ञान की दो धाराएँ कह सकते हैं। स्वर-शास्त्र

और शब्द-शास्त्र के माध्यम से ही हमारी विचारणाएँ और भावनाएँ प्रदीप्त होती हैं। आचार्य आनंदवर्धन ने इस प्रतीक अलंकार पर अधिक प्रकाश डाला है। भगवान् शंकर के डमरू और भगवान् कृष्ण की बाँसुरी में भी संगीत-गरिमा का ही संकेत है।

इन दिनों शास्त्रीय-संगीत 'क्लासिकल म्युजिक' और सुगम-संगीत—'लाइट-म्युजिक' के दो भागों में संगीत को विभक्त किया जाता है। गीत के चार अंग माने गये हैं—स्वर, पद, लय और मार्ग। स्वरगान अर्थात् गायन के रूप में प्रयुक्त होने वाला और 'अभिधानावान्' अर्थात्— वार्तालाप के रूप में व्यक्त होने वाला, इस रूप में भी शब्द का विभाजन है। इसी को गेय-पक्ष और वाक्-पक्ष भी कहते हैं।

संगीत रत्नाकर-ग्रंथ में नाद ब्रह्म की गरिमा पर प्रकाश डालते हुए कुछ ऊहा-पोह किया गया है—

चैतन्यं सर्वभूतानां विवृतं जगदात्मना।
नादोब्रह्म तदानंदमतींद्रियमुपास्महे।।
नादोपासनयादेवा ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः।
भवन्त्युपासिता नूनं यस्मादेते तदात्मकाः।।

नाद-ब्रह्म समस्त प्राणियों में चैतन्य और आनंदमय है। उसकी उपासना करने से ब्रह्मा, विष्णु, महेश तीनों की सम्मिलित उपासना हो जाती है। वे तीनों नाद-ब्रह्म के साथ बँधे हुए हैं।

नकारं प्राण नामानं दकारमनलंविदुः।
ज्ञातः प्राणाभिसंयोगातेन नादोऽभिधीयते।।

प्राण का नाम 'ना' है और अग्नि को 'द' कहते हैं। अग्नि और प्राण के संयोग से जो ध्वनि उत्पन्न होती है, उसे नाद कहते हैं।

संगीत रत्नाकर में नाद को बाईस श्रुतियों में विभक्त किया गया है। ये श्रुतियाँ कान से अनुभव की जाने वाली विशिष्ट शक्तियाँ हैं। इनका प्रभाव मानवी-काया और चेतना पर होता है। इन बाईस शब्द-श्रुतियों के नाम हैं—(१) तीव्रा, (२) कुमद्धति,

(३) मंदा, (४) छंदोवती, (५) दयावती (६) रंजनी, (७) रब्तिका, (८) रौही, (६) क्रोधा (१०) वडिनका, (११) प्रसारिणी, (१२) प्रीति, (१३) मार्जनी, (१४) क्षिति, (१५) रक्ता, (१६) संदीपनी, (१७) अलापिनी, (१८) मदंति, (१६) रोहिणी, (२०) रंपा, (२१) उग्रा, (२२) क्षोभिणी।

इन बाईस ध्वनि-शक्तियों को सप्त-स्वरों के साथ संबद्ध किया गया है। यह विभाजन इस प्रकार है—

—षड्ज (सा) तीव्रा, कुमद्धाति, मंदा, छंदोवती।

—रिषभ (रे) दयावती, रंजनी, रब्तिका।

—गांधार (ग) रौही, क्रोधा।

—मध्यम (म) वडिनका, प्रसारिणी, प्रीति, मार्जनी।

—पंचम (प) क्षिति, रक्ता, संदीपनी, अलापिनी।

—धैवत (ध) मदंति, रोहिणी, रंपा।

—निषाध (नि) उग्रा, क्षोभिणी।

इन बाईस शक्तियों को ध्वनि के द्वारा उत्पन्न होने वाले भौतिक एवं चेतनात्मक प्रभाव ही समझना चाहिए। औषधियाँ जिस प्रकार मूल द्रव्यों के रासायनिक सम्मिश्रण से उत्पन्न होने वाले अतिरिक्त प्रभाव के कारण विभिन्न रोगों पर अपना प्रभाव डालती है। इसी प्रकार इन बाईस शक्तियों का—उनके सम्मिश्रण का वस्तुओं तथा प्राणियों पर प्रभाव पड़ता है। प्राचीनकाल में इस रहस्यमय विज्ञान के ज्ञाता नाद-ब्रह्म के उपासक कहलाते थे। वे विभिन्न गीत-वाद्यों के, भाव मुद्राओं के और रसानुभूतियों के आधार पर अपने अंतराल में दबी हुई शक्तियों को जगाते थे और संपर्क में आने वाले श्रोताओं की व्यथा-वेदनाएँ हरते थे। जड़-चेतन प्रकृति को प्रभावित करके, वे अवांछनीय परिस्थितियों को बदलकर अनुकूल वातावरण उत्पन्न करने में भी चमत्कारी सफलता प्राप्त करते थे। नाद-योग का स्थान किसी भी उच्चकोटि की योग-साधना से कम न था।

नाद-योग में अनाहत स्वर-सूर्य ॐकार का आश्रय लिया जाता है और उसके वाहन अन्य स्वरों को घंटा, शंख, बंसी, भेरी, मृदंग के गुंजन, कंपन, गर्जन आदि के रूप में सूक्ष्म कर्णेंद्रिय के माध्यम से सुना जाता है। इस आधार-अवलंबन के सहारे योगीजन भगवद्-वाणी का अवगाहन करते हैं। प्रकृति के अंतराल में चल रही हलचलों को समझते हुए वर्तमान और भविष्य की स्थिति एवं संभावनाओं का ज्ञान प्राप्त करते हैं।

ब्रह्मांड में चल रहे स्वर-प्रवाह की तरह ही पिंड-रूपी सितार के तार भी अपने क्रम से झंकृत होते रहते हैं। मेरु-दंड स्पष्टतः वीणादंड है। सात धातुओं के सात तार इसमें जुड़े हैं। सप्त-विधि अग्नियों का पाचन-परिपाक चलते रहने से ही तो प्राण को पोषण मिलता है और जीवन को स्थिर रखा जाता है। यह अग्नियाँ सात धातुओं को पकाती हैं और परिपाक को तेजस् में बदलती हैं। (१) पेशियों का आकुंचन-प्रकुंचन, (२) नाड़ियों का रक्ताभिषरण, (३) फुफ्फुसों का श्वास-प्रश्वास, (४) हृदय की धड़कन (५) मस्तिष्कीय विद्युत् का ऋण-धन, आरोह-अवरोह (६) चित्त का विश्राम-जागरण (७) कोशिकाओं का जन्म-मरण—यह सात क्रियाकलाप ही जीवन विद्या के मूलभूत आधार हैं। इन्हीं को सप्त-ऋषि, सप्त-लोक, सप्त-दीप, सप्त सागर, सप्त-मेरु, सप्त-सरित, सप्त-शक्ति के नाम से पुकारते हैं। शब्द-सूर्य के यही सप्त-अश्व हैं। स्वर-सप्तक इन्हीं की प्रत्यक्ष अनुभूति हैं। ब्रह्मांडव्यापी शब्द ब्रह्म का गुंजन काय-पिंड के अंतर्गत भी सुना जा सकता है।

नाद के दो भेद हैं—आहत और अनाहत। स्वच्छंद तंत्रग्रंथ में इन दोनों के अनेक भेद-उपभेद बताए गए हैं। आहत और नाद को आठ भागों में विभक्त किया है। घोष, राव, स्वन, शब्द, स्फुट, ध्वनि, झंकार, झंकृति। अनाहत की चर्चा महाशब्द के नाम से की गई है। इन्हें स्थूल कर्णेंद्रिय नहीं सुन पाती, वरन् ध्यान-धारणा द्वारा अंतःचेतना में ही इनकी अनुभूति होती है।

विकृत, वादी, संवादी, अनुवादी और विवादी स्वरों का उनके ग्रह, अंश और न्याय-पक्षों का, तिरेसठ अलंकारों का, उनचास कूट

तानों का संगीत रत्नाकर में उल्लेख है। मध्यकाल में राज्याश्रय पाकर संगीत का स्वर पक्ष काफी विकसित हुआ था। इससे पूर्व वह संतों और योगियों का प्रिय विषय था। तब उसकी गणना श्रेयसाधना के रूप में की जाती थी।

दीपक-राग, मेघ-राग जैसे स्वर ब्रह्म के नगण्य से स्थूल प्रकृति से संबंधित चमत्कार है; सूक्ष्म प्रकृति को तरंगित और उत्तेजित करने में उसकी धाराएँ बदलने में भी संगीत का प्रभाव स्वल्प दृष्टिगोचर नहीं होगा। अन्य योगों की साधना का अवलंबन लेकर जिस प्रकार उच्चकोटि की सिद्धियाँ प्राप्त की जा सकती हैं, उसी प्रकार स्वर-योग की साधना से भी उच्च अध्यात्म की भूमिका में प्रवेश करके दिव्य विभूतियों को करतलगत किया जा सकता है। जिस प्रकार ब्रह्मांड के अंतराल में नाद-ब्रह्म का गुंजन संव्याप्त है, उसकी प्रतिध्वनि से पिंड की अंतःस्थिति भी गूँजती रहती है, संगीत की स्वर-साधना इस अव्यक्त गुंजन को व्यक्त बनाती है—मुखर करती है। गान-नाद उच्च स्तर का हो, तो अंतरात्मा की भावसत्ता को तरंगित करके ब्रह्मानंद की, आत्मानंद की रसानुभूति करा सकता है।

प्रसिद्ध है तानसेन दीपक-राग गाकर बुझे हुए दीपक जलाते थे और मेघ-राग गाकर छितराये बादलों को घटा बनाकर बरसाते थे। यह विद्या उन्होंने स्वामी हरिदास के चरणों में बैठकर योग-साधना के रूप में सीखी थी। प्राणायाम के उच्च-स्तरीय अभ्यास ने उन्हें शब्द-ब्रह्म का वेत्ता बनाया था। आहत-नाद और अनाहत-नाद की अत्यंत सूक्ष्म प्रवाह श्रृंखला को नाद-योग के आधार पर ही अनुभव में लाया जाता है। स्वर-साधना प्रकारांतर से नाद-ब्रह्म की वैसी ही आराधना है, जैसी ब्रह्म-विद्या के अंतर्गत अद्वैत-ब्रह्म चिंतन की।

संगीत को अब तक उस कला के रूप मे देखा जाता रहा है, जिससे मनोरंजन होता है और मन को स्फूर्ति मिलती है, पर अब विज्ञान धीरे-धीरे इस विश्वास पर उतर रहा है कि संगीत एक बड़ा महत्त्वपूर्ण शक्ति-केंद्र है। यदि उस शक्ति का यथेष्ट अनुसंधान एवं

उपयोग किया जा सका, तो अनेक आश्चर्यजनक रहस्य सामने आएँगे और उनका मानव-जाति के कल्याण में भारी उपयोग किया जा सकेगा।

आज का संगीत इस प्रकार का सम्मोहन है, जिससे मनुष्य असंयम की ओर दिग्भ्रांत हो रहा है, परंतु प्राचीनकाल में हमारे पुरखों ने तत्त्वान्वेषण के आधार पर उसकी प्रबल शक्ति और सामर्थ्य को परखने के साथ यह भी जाना था कि संगीत-शक्ति के दुरुपयोग से मानव-जीवन का अहित भी हो सकता है, इसलिए उसे भी धर्म का एक अंग माना और ऐसे प्रतिबंध लगाए, जिससे स्वर साधना का निष्कलंक रूप बना रहे और उससे मानव-जाति की भलाई होती रहे।

बीच में एक समय ऐसा आया, जब शास्त्रीय-संगीत में विदेशी जातियों का भी हस्तक्षेप हुआ और उन्होंने धीरे-धीरे उसे आज की स्थिति में घसीटना प्रारंभ कर दिया। आज चारित्रिक दुर्बलता का एक कारण संगीत की सम्मोहक-शक्ति भी है। मीठे स्वर से किसी भी भावुक व्यक्ति को प्रभावित कर उसे अधोभागी बनाने का कुचक्र इन दिनों बहुतायत से फैलता जा रहा है।

अन्यथा संगीत एक महान् साधना है और ब्रह्म प्राप्ति उसकी सिद्धि। नादबिंदूपनिषद् के ४२ से ४५ मंत्रों में बताया गया है कि, भ्रमर जिस प्रकार फूलों का रस ग्रहण करता हुआ, फूलों की गंध की अपेक्षा नहीं करता, उसी प्रकार नाद में रुचि लेने वाला चित्त, विषय-वासना में दुर्गंध की इच्छा नहीं करता। सर्प नाद को सुनकर मस्त हो जाता है, उसी प्रकार नाद में आसक्त हुआ चित्त सभी तरह की चपलताएँ भूल जाता है। संसार की चपलताओं से वियुक्त मन की एकाग्रता बढ़ती है और विषय-वासनाओं से अरुचि होने लगती है। यदि मन को हिरन और तरंग की संज्ञा दें, तो यह नाद उस हिरन को बाँधने और पकड़ने वाला जाल और तरंग को साधने वाला तट ही माना जायेगा।

इसी उपनिषद् में ब्रह्म की अनुभूति-शक्तियों में नाद को भी शक्ति माना है और बताया गया है कि उसका अभ्यास करते हुए साधक एक ऐसे मधुर स्वर-संगीत में निबद्ध हो जाता है, जिससे सारा संसार ही उसे एक प्राण और परमात्मा का प्रतीक अनुभव होने लगता है।

योग तारावली में एक आख्यायिका आती है। देव समूह एक बार भगवान् शिव के पास गए और साधना में शीघ्र सफलता का आधार पूछा—

सदा शिवोक्तानि सपादलक्ष—
लयावधानानि वसन्ति लोके।
नादानुसंधानसमाधिमेकम्
मन्यामहे मान्यतमम् लयानाम्।।

—योग तारावली

तब भगवान् शिव ने मन को लय करने की अगणित साधनाओं में नादनुसंधान को सबसे सरल और श्रेष्ठ बताया।

सर्वचिन्तां परित्यज्य सावधानेन चेतसा।
नाद एवानुसन्धेयो योग साम्राज्यमिच्छता।।

—योग तारावली

यदि योग-क्षेत्र में प्राप्त करने की आकांक्षा हो तो सब ओर से मन हटाकर नाद-साधना में तत्पर होना चाहिए।

अणु परिवार की गतिविधियों की शोध करने पर पता चला है कि अपनी धुरी पर तथा कक्षा पर घूमने वाले परमाणु घटकों को जो दिशा, प्रेरणा और क्षमता प्राप्त होती है, उसका उद्गम एक अतीव सूक्ष्म-शक्ति है, जिसे ध्वनि का प्रारूप कह सकते हैं।

प्रकृति की प्रेरक-शक्ति के अंतराल में एक प्रकार के स्पंदन होते हैं। इनकी घड़ियाल में हथौड़ी मारने से उत्पन्न होने वाली टंकार से तुलना कर सकते हैं। टंकार के बाद जो झनझनाहट होती है, उसे दिव्यदर्शियों ने ॐकार ध्वनि कहा है। निरंतर यही ध्वनि सूक्ष्म-प्रकृति के अंतराल में गतिशील रहती है। इसी को

प्रकृति-ब्रह्म का संयोग कहते हैं, इसी आघात-प्रतिघात से सृष्टि की समस्त हलचलों का आरंभ-अग्रगमन होता है। अणु को गति यहीं से मिलती है। ऊर्जा की तरंग श्रृंखला इसी केंद्र से उत्पन्न होती है। एक सत्ता का बहुसंख्यक विकरण—एकोऽहम् बहुस्याम की उक्ति के अनुसार इसी मर्म-बिंदु से आरंभ होता है। बिंदुयोग और नादयोग की नाभि यही है, यही स्वर-संस्थान नादयोग है, शब्द-ब्रह्म की अपनी माया—स्फुरणा-इच्छा के साथ चल रही यही संयोग ओंकार के रूप में निःसृत होकर परा और अपरा प्रकृति के गहन गह्वर में जड़-चेतन गतिविधियों का सृजन करता है।

दीवार घड़ी का चलता हुआ पेंडुलम एक बार हिला दिया जाए तो घड़ी में चाबी रहते तक वह अपने क्रम से निरंतर हिलता ही रहता है। ठीक उसी प्रकार एक बार आरंभ हुई सृष्टि स्वसंचालित प्रक्रिया के अनुसार अपना कार्य करती रहती है—अपनी धुरी पर एक बार घुमाये हुए लट्टू की तरह देर तक घूमती रहती है। इसका संचालक शब्द-ब्रह्म की वह मूल ध्वनि है, जिसे ॐकार कहते हैं। जिस प्रकार एक सूर्य में सात रंग की सात किरणें निःसृत होती हैं, उसी प्रकार स्वरब्रह्म अपने को सात स्वरों में विभक्त करता है। वाद्य यंत्रों में उसे सा, रे, ग, म, प, ध, नि क्रम से बजाया जाता है। योग-साधना में राजयोग, हठयोग, प्राणयोग, शक्तियोग, ज्ञानयोग, कर्मयोग, भक्तियोग का नाम दिया जाता है। शरीर में इसी को षट्चक्र और सप्तम ब्रह्मरंध्र सहस्त्र कमल के रूप में गिना जाता है। सप्तऋषि, सप्तलोक, सप्तसागर, सप्तमेरु, सप्तदेव, सप्ततीर्थ, सप्तसाधना के रूप में ब्रह्मविद्या का विस्तार हुआ है। भौतिकी-विज्ञान भी सात भागों में ही विभक्त है।

इन सबको मिलाकर स्वसंचालित सृष्टिक्रम की अंतःस्फुरणाओं को ब्रह्म संगीत कह सकते हैं। इसी का अलंकारिक उल्लेख कृष्ण की वंशी, शंकर का डमरू, सरस्वती की वीणा, मानवी काया का मेरुदंड, कंठ स्थित स्वर नलिका, धड़कता हुआ हृदय कहा जा सकता है। लप-डप को धड़कन का, शंकर का डिम-डिम घोष कहा गया है। श्वास-नलिका में वायु का आवागमन 'सोऽहम्' की ध्वनि में—

कृष्ण बाँसुरी के रूप में निनादित होता है। इड़ा, पिंगला और आरोह-अवरोह मेरुदंड की वीणा में सप्त व्याहृतियों के सप्त-स्वरों की झंकार उत्पन्न करते हैं और उसे कुंडलिनी सर्पिणी की सप्त जिह्वाओं सप्त-नादों के रूप में उद्‌भूत हुआ सुना जाता है। नादयोग के साधक सूक्ष्म कर्णेंद्रिय के माध्यम से घंटा-नाद, शंख-नाद, वेणु-नाद, मेघ-नाद, निर्झर-प्रवाह आदि के रूप सुनने का प्रयत्न करते हैं और उस आधार पर सूक्ष्म-प्रकृति के अंतराल में चल रही अगणित गतिविधियों के ज्ञाता बनते हैं। इन स्वर निनादों के साथ जो अपना संबंध जोड़ लेता है, वह प्रकृति पर आधिपत्य स्थापित करने और उसे अपनी अनुयायी—संकेतगामिनी बनाने में सफलता प्राप्त करता है। योगविद्या का अपना स्थान है। स्वर शास्त्र स्वरयोग का साधना विज्ञान में महत्त्वपूर्ण स्थान है। नासिका द्वारा चलाने वाले सूर्य-चंद्र स्वरों को माध्यम बनाकर, कितने ही साधक प्रकृति के अंतराल में प्रवेश करते हैं और वहाँ से अभीष्ट मणिमुक्तक उपलब्ध करते हैं।

पशु-पक्षियों से लेकर छोटे कीड़े-मकोड़े तक के उच्चारण में एक क्रमबद्धता रहती है। संगीतकारों के गायन-वादन क्रम से न सही, वे सभी एक निर्धारित ध्वनि-प्रवाह के अनुसार ही अपना उच्चारण करते हैं। प्रातःकाल चिड़ियों की चहचहाहट में एक स्वर क्रम रहता है, उसी से वह कर्णप्रिय लगती है। मुर्गे की बाँग, कोयल की कूक, मोर, कौआ, पपीहा, तीतर आदि पक्षियों की वाणी अपने ढंग और अपने क्रम से चलती है। पशुओं में भेड़ का मिमियाना, गधे का रेंकना, घोड़े का हिनहिनाना, हाथी का चिंघाड़ना, शेर का दहाड़ना, कुत्ते का भौंकना क्रमबद्ध रहता है। किसी भी पशु की, किसी भी पक्षी की आवाजें सुनी जाएँ, उनमें एक व्यवस्थित स्वर-क्रम जुड़ा हुआ प्रतीत होगा। छोटे कीड़ों में भी यह बात देखी जाती है। झींगुर रातभर बोलते हैं। झिल्ली की झंकार उठती है, उसे सुनने वाले अनुभव कर सकते हैं कि निद्रा लगने वाली एक मनोरम स्वर-लहरी इन तुच्छ से कीटकों के माध्यम से सुनाई जाती है। मनुष्य के कानों की पकड़ से बाहर की ध्वनियाँ प्रायः प्रत्येक

जीवधारी द्वारा निःसृत होती हैं और पेड़-पौधों से लेकर जड़ समझे जाने वाले पदार्थों तक से एक श्वास-प्रश्वास जैसी निरंतर स्वसंचालित स्वर-क्रम निरंतर निनादित होता रहता है।

सेनाएँ जब किसी पुल को पार करती है तो उन्हें आज्ञा दी जाती है कि लैफ्ट-राइट क्रम के अनुसार कदम मिलाकर चलने में एक ऐसी प्रचंड शक्तिशाली ध्वनि उत्पन्न होती है, जो अमुक स्थिति में उन पुलों को ही गिरा सकती है। शब्द शक्तिमान् तत्त्व है। बिजली की तड़कन की ध्वनि से बड़ी-बड़ी आलीशान इमारतें, कोठियाँ फट जाती हैं। धड़ाके की आवाज से कानों के पर्दे फट जाते हैं। इस शक्ति का यदि क्रमबद्ध व्यवस्थित रूप से उपयोग किया जा सके, तो शारीरिक-मानसिक स्वस्थता के लिए ही नहीं, सृष्टि के अनेक पदार्थों और संसार की बहुमुखी परिस्थितियों एवं वातावरणों को आश्चर्यजनक रीति से प्रभावित किया जा सकता है।

वेदों का अवतरण शब्द-ब्रह्म के सहित हुआ है। स्वर अपौरुषेय है, इसलिए वेदों को अपौरुषेय कहा जाता है। प्रत्येक वेद-मंत्र को ऋचा एवं छंद कहा जाता है, उससे उसकी स्वरबद्धता स्पष्ट की गई है। वेदों के गायन की ध्वनि पद्धतियों को ही साम-गान कहते हैं। सामवेद के अपने मंत्र तो उँगलियों पर गिनने जितने ही हैं, शेष प्रायः सभी अन्य तीन वेदों से लिए गए हैं और उनका संकलन विशिष्ट स्वर-लिपियों के साथ किया गया है। किसी समय सामगान की एक हजार स्वर-ध्वनियाँ थीं, इन्हें साम-शाखाएँ कहा जाता था, अब उनमें से बहुत थोड़ी ही शेष रह गई हैं। किसी समय सामगान वैदिक साधना-पद्धति का प्रधान अंग था। इसी आधार पर स्व, पर कल्याण के अनेक प्रयोजन सिद्ध होते थे। वेदी-मंत्र में जो शिक्षाएँ सन्निहित हैं वे तो साधारण हैं, उनसे भी अधिक स्पष्ट और प्रभावी शिक्षाएँ, स्मृतियों तथा अन्यान्य धर्मग्रंथों में मौजूद हैं। वेद-मंत्रों का महत्त्व मात्र उनके अर्थों या निर्देशों तक सीमित नहीं है, वरन् उसकी गरिमा उन शक्तियों में अंतर्निहित है, जो इन ऋचाओं के स्वर उच्चारण से प्रादुर्भूत होती है।

सूक्ष्म-विज्ञानी जानते हैं कि रक्ताभिषरण, श्वास-प्रश्वास, आकुंचन-प्रकुंचन का शरीर में निरंतर चलने वाला क्रिया-कलाप विभिन्न प्रकार की स्वर-ध्वनियाँ उत्पन्न करता है और उन्हीं के तरंग-प्रवाह से जीवन गति चलती है। नाद-योग के पूर्वार्ध में साधक अपनी कर्णेंद्रिय का संयम करके इन्हीं ध्वनियों को सुनता है और सपेरे एवं अहेरियों की रीति अपनाकर मन रूपी मृग एवं सर्प को वश में करता है। कहा जा चुका है कि सृष्टि के विभिन्न क्रियाकलापों को संचालित करने वाली भौतिक शक्तियाँ तथा भावनात्मक अभिव्यंजनाएँ सूक्ष्म प्रकृति के अंतराल में मूलतः ध्वनि-प्रवाह बनकर ही कार्य कर रही हैं। यह ध्वनि-प्रवाह संख्या में सात हैं। उनके परस्पर सम्मिश्रण से बहुसंख्यक ध्वनि-तरंगें भी बनती हैं। शरीर में भी इनकी संख्या सात है और सृष्टि के अंतराल में भी वे सात ही हैं। वेद-मंत्रों की स्वर-संरचना इसी तथ्य को ध्यान में रखकर हुई है। उनका विधिवत् उच्चारण जहाँ प्राणधारियों में विभिन्न स्तर की स्फुरणाएँ उत्पन्न करता है, वहाँ सृष्टिगत हलचलों के मूल में चल रहे स्पंदनों के साथ भी अपना संबंध बनाता है। इसी आधार पर वेद-मंत्रों के आश्चर्यजनक प्रभाव होते हैं। शाप-वरदान की, शुभ के अभिवर्धन और अशुभ के निराकरण की-जो शक्ति श्रुति में भरी पड़ी है, उसका आधार यह वैदिक स्वर-विज्ञान ही है। लय-योग के साधक 'अनहद नाद' के नाम से इसकी व्याख्या करते हैं और नाद बिंदुयोग को आधार बनाकर परब्रह्म के साथ अपना तादात्म्य स्थापित करते हैं। सिद्धियाँ और विभूतियाँ स्पष्टतः इसी तादात्म्य से उत्पन्न होती हैं। शब्दयोगी—नादब्रह्म का साधक इस प्रक्रिया को अपनाकर सिद्ध योगी बन सकता है और न केवल अपना, वरन् अपने श्रोताओं का भी कल्याण कर सकता है। प्राचीन-काल में समय-समय पर वेद-मंत्रों के सस्वर उच्चारण का प्रयोग स्वर-विद्या के रूप में, मानवी व्यक्तित्व के समग्र विकास के लिए, उससे उत्पन्न अवरोधों का समाधान करने के लिए किया जाता रहा है। प्रयत्न किया जाए तो उस विज्ञान को पुनर्जीवित करके वैसा ही लाभ फिर उठाया जा

सकता है, जिससे व्यक्तित्व में देवत्व का उदय और समाज में स्वर्गीय परिस्थितियों का अवतरण किया जा सके।

फ्रांसीसी प्राणिशास्त्री वास्तोव आंद्रे ने थलचरों, जलचरों और नभचरों पर विभिन्न ध्वनि-प्रवाहों की, स्वर लहरियों की होने वाली प्रतिक्रियाओं का गहरा अन्वेषण किया है, तदनुसार वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि, संगीत प्रायः प्रत्येक जीवधारी के मस्तिष्क एवं नाड़ी संस्थान पर आश्चर्यजनक प्रभाव डालता है। उनकी प्रकृति और मनःस्थिति के अनुरूप यदि संगीत बने तो उन्हें मानसिक प्रसन्नता और शारीरिक उत्साह प्राप्त होता है, किंतु उनकी कर्णेंद्रिय को कर्कश लगने वाली अरुचिकर ध्वनियाँ बजाई जाएँ तो उससे उन्हें अप्रसन्नता होती है और स्वास्थ्य-संतुलन भी बिगड़ता है। किस प्राणी की, किस स्थिति में, किस प्रकार का संगीत क्या प्रतिक्रिया उत्पन्न करता है ? इसका अध्ययन करने वाले जर्मन प्राणिशास्त्री यह आशा करते हैं कि भविष्य में विभिन्न जीवधारियों की मनःस्थिति में आशाजनक परिवर्तन समय-समय पर किया जा सकेगा। हिंस्र-पशुओं को भी कुछ समय के लिए शांत किया जा सकेगा और अवांछनीय जीवों को उनके लिए अरुचिकर सिद्ध होने वाली ध्वनियाँ सुना करके, उन्हें दूर भगाया जा सकता है। इसी प्रकार उन्हें कई प्रवृत्तियों में संलग्न एवं उदासीन बनाने का कार्य भी संगीत के माध्यम से किया जा सकता है।

साँप की बीन की नाद पर मुग्ध होकर लहराने लगना, हिरनों का अहेरी का वाद्य सुनकर खड़े हो जाना, प्रसिद्ध है। वाद्य बाल-वृद्ध सभी को आकर्षित करता है। उसे प्रत्येक उत्सव आयोजन में स्थान दिया जाता है। मनोरंजन में तो उसका स्थान किसी न किसी प्रकार रहता ही है। थके हारे इस माध्यम से नवीन स्फूर्ति प्राप्त करते हैं। संगीत शब्द-ब्रह्म की स्वर-साधना है, उससे मनुष्यों का ही नहीं, समस्त प्राणियों का श्रेय साधन हो सकता है और सर्वत्र उल्लास-आनंद का विस्तार हो सकता है।

❑ ❑

नादयोग का दिव्य सत्ता के साथ आदान-प्रदान

▼

नाद-ब्रह्म अथवा शब्द-ब्रह्म का अभिप्राय उस अनाहत ध्वनि से है, जो प्रकृति और पुरुष के संयोग स्थल से निरंतर प्रसृत और निनादित होती रहती है। ॐ कार वही स्वयंभू ब्रह्मनाद है। उससे सप्त स्वर प्रस्फुटित हुए। श्रुति-शास्त्र में प्रयुक्त होने वाले उदात्त- अनुदात्त स्वरूप उसी के आरोह-अवरोह हैं। संगीत शास्त्र में आगे चलकर वे ही सा, रे, ग, म, प, ध, नि के स्वर सप्तक बन गये। सूर्य रथ के सप्त अश्व उसके प्रभा किरणों में सन्निहित रंग हैं। उसी प्रकार ब्रह्मनाद का ध्वनि-गुंजन सप्तधा स्वर लहरी में निनादित होता है।

यों सुनने में सप्त स्वर और उनके आरोह-अवरोह मात्र शब्द ध्वनि का उतार-चढ़ाव प्रतीत होते हैं और उनका उपयोग वाद्य-गायन में प्रयुक्त होना भर लगता है, पर वस्तुतः उसकी सीमा इतनी स्वल्प नहीं है। मनुष्य-कृत स्वर लहरी के अतिरिक्त प्रकृति गत स्वर-प्रवाह जीवधारियों द्वारा विविध विधि उच्चारण भी कम महत्त्व के नहीं है। मेघ-गर्जन, समुद्र-तर्जन, विद्युत्-कड़क, वायु-सनसनाहट, निर्जन की साँय-साँय, अग्नि-शिखा की धू-धू, निर्झर निनाद आदि प्रकृतिगत ध्वनियाँ हमें समय-समय पर सुनने को मिलती रहती हैं। इसके अतिरिक्त विभिन्न पशु-पक्षी आवश्यकतानुसार अपनी-अपनी बोलियाँ बोलते हैं। रात्रि की नीरवता में झिल्ली की झंकार सुनते ही बनती है। सूर्योदय के समय पक्षियों के कंठ कितने प्रकार की कितनी मधुर-स्वर लहरियाँ प्रस्तुत करते हैं? उन्हें सुनकर मुग्ध हो जाना पड़ता है। लगता है स्वर-ब्रह्म अपने अगणित ध्वनि-प्रवाहों में न जाने कितने भाव भरे संकेतों और संदेशों को इस विश्व-ब्रह्मांड में भरता-बहाता रहता है।

यह सब आहत ध्वनियाँ हैं, जो कानों से सुनी जा सकती हैं। विज्ञान की पकड़ में वे ध्वनियाँ भी आ गई हैं, जो मनुष्य के कानों से सुनी जा सकने वाली मर्यादा से या तो ऊँची है या नीची। हमारे

खुले कान उन्हें सुन नहीं सकते, फिर भी साधन-उपकरणों द्वारा उन्हें उसी प्रकार सुना जा सकता है— जैसे खुली आँख से दीखने वाले लघुकाय-जीवाणु माइक्रोस्कोप जैसे सूक्ष्म-दर्शक यंत्रों से भलीप्रकार देखे जा सकते हैं। यह प्रकृतिगत ध्वनियाँ हैं। कान की पकड़ से बाहर होने के कारण ही इन्हें सूक्ष्म कहा जाता है, अन्यथा वस्तुतः यह स्थूल ही है, क्योंकि यंत्रों के माध्यम से उन्हें हमारे कान भी सुन-समझ सकते हैं।

इसमें ऊँचे स्तर की ध्वनियाँ वे ही हैं, जिन्हें जड़-जगत् के अंड-परमाणुओं द्वारा स्पंदित नहीं कहा जा सकता। उनका संबंध चेतन-जगत् के जीवन-प्रवाह से है। उन्हें एक प्रकार से अतींद्रिय भी कह सकते हैं। उनका मूल स्रोत चेतना-तत्त्व है। इसलिए उन्हें ब्रह्मवाणी भी कहते हैं। इन्हीं ध्वनियों का अलंकारिक वर्णन शिव के डमरू घोष, सरस्वती के वीणा वादन एवं कृष्ण की वंशी, दुर्गा के निनाद, ताल-नृत्य एवं भैरव नाद जैसे सरस उपाख्यानों और घटनाक्रमों के रूप में किया गया है।

यह दिव्य ध्वनियाँ अनंत अंतरिक्ष में बिना किसी प्रकृतिगत हलचल का आश्रय लिए स्वयमेव विनिस्सृत होती रहती है। ये चेतन हैं, दिव्य हैं, अलौकिक, अभौतिक और अतींद्रिय हैं। इसलिए उन्हें देववाणी भी कहते हैं। उन्हें ध्यान-योग के माध्यम से हमारा चेतन-अंतःकरण सुन सकता है। श्रवण का संबंध कर्णेंद्रिय से है, अस्तु सूक्ष्म एवं चेतन श्रवण भी शब्द-संस्थान के इसी प्रतिनिधि केंद्र का सहारा लेकर सुना जाता है। प्रत्येक इंद्रिय की तन्मात्राएँ स्थूल से सूक्ष्म का संबंध बनाती हैं। शब्द, रूप, रस, गंध, स्पर्श शरीर की पाँच ज्ञानेंद्रियों के माध्यम से पाँच तत्त्व के सान्निध्य से उत्पन्न होने वाली अनुभूतियों से ही हमें अवगत कराती हैं। यह स्थूल का सूक्ष्म की ओर गति का एक चरण हुआ। उसके अगले चरण विशुद्ध चेतन एवं अभौतिक हो जाते हैं। जिन दिव्य-ध्वनि-प्रवाहों की चर्चा इन पंक्तियों में हो रही हैं। वह उसी चेतन-जगत् के उच्च स्तर से संबंधित हैं। ब्रह्मवाणी देव-ध्वनि को इसी रूप में समझा जाए।

नादयोग का केंद्र-बिंदु उपरोक्त पंक्तियों के आधार पर सरलतापूर्वक जाना जा सकता है। योगशास्त्र के साधना-विधानों में एक महत्त्वपूर्ण धारा नादयोग की भी है। कानों को उँगलियों से, शीशी वाले कार्क से, कपड़े की गोली से इस प्रकार बंद किया जाता है कि बाहर की वायु या स्थूल आवाजें भीतर प्रवेश न कर सकें। इस स्थिति में कानों को बाहरी ध्वनि-आधार से विलग किया जाता है और ध्यान को एकाग्र करके यह प्रयत्न किया जाता है कि अतींद्रिय जगत् से आने-वाले शब्द-प्रवाह को अंतःचेतना द्वारा सुना जा सके। यों इसमें भी कर्णेंद्रिय का, उसकी शब्द-तन्मात्रा का योगदान तो रहता है, पर वह श्रवण है, वस्तुतः उच्चस्तरीय चेतन-जगत् की ध्वनि लहरी सुनने के लिए, कर्णेंद्रिय और अंतःकरण का इसे संयुक्त प्रयास भी कह सकते हैं।

कानों से सुनी जाने वाली ध्वनियाँ इतनी उथली और हलकी होती हैं कि उनका किसी प्राणी या पदार्थ पर जानकारी देने के अतिरिक्त और कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ता। यों श्रवण ध्वनियों के साथ जुड़े हुए घटनाक्रम एवं घुले हुए भाव-प्रवाह अपना महत्त्व रखते हैं और यत्किंचित प्रभाव भी डालते हैं, पर वह सब मिलाकर भी श्रवणातीत ध्वनियों की क्षमता के समतुल्य नहीं हो सकता। प्रकृति का अनुग्रह ही है कि वे सूक्ष्म ध्वनियाँ हमारे कानों की जीवसत्ता को बिना प्रभावित किए ही अंतरिक्ष में उड़ती रहती हैं। यदि वे सुनाई देने लगतीं तो कोलाहल से कान बहरे हो जाते। यदि वे प्रभावित करने लगतीं तो उनके प्रहार से शरीर-सत्ता का अस्तित्व ही संदिग्ध बन जाता।

कानों की ग्रहण शक्ति बहुत ही भौंड़ी और थोड़ी है। हमारे कान मात्र एक सेकंड में २० से लेकर २० हजार तक कंपन उत्पन्न करने वाली ध्वनियों को ही सुन सकते हैं। इससे न्यूनाधिक कंपनों की ध्वनियाँ पकड़ में नहीं आतीं, श्रवणातीत अति स्वर-ध्वनियाँ १० लाख से लेकर १००० करोड़ कंपनों तक की तरंगें हर सेकंड उत्पन्न करने वाली पाई गई हैं, इनकी सामर्थ्य उनकी सूक्ष्मता के आधार पर अधिकाधिक होती चली जाती है।

श्रवणातीत ध्वनियों का उपयोग जब से वैज्ञानिकों ने जाना है, तब से वे उनके अत्यंत प्रभावशाली उपयोग करने लगे हैं। शल्य चिकित्सा, कीटाणु संहार, ऋतु-परिवर्तन, मोटे धातु खंडों को गला देना, जैसे प्रचंड कार्य उनसे लिए जा रहे हैं। कल-कारखानों के लिए तो उन्हें बिजली एवं अणुशक्ति की तरह काम में लाया जा रहा है।

वैज्ञानिक सोचते हैं कि भविष्य में मानवी आवश्यकता की अभीष्ट ऊर्जा, श्रवणातीत ध्वनि-तरंगों से उपलब्ध की जा सकेगी। तब मनुष्य को परम शक्तिशाली कहला सकने का अवसर मिल जायेगा।

धरती पर हो रही हलचलों से जो ध्वनि-तरंगें उत्पन्न होती हैं, उनके अतिरिक्त ऐसी तरंगें भी पाई गई हैं, जिनका जागतिक हलचलों से सीधा संबंध नहीं है। उनका स्तर, स्वरूप एवं प्रभाव अलौकिक है। विज्ञानी सोचते हैं कि यह विलक्षण अंतर्ग्रही ध्वनि-प्रवाह ब्रह्मांड के किसी अज्ञात केंद्र से धरती पर आता है और उसी की सामर्थ्य से अपने भूलोक के विभिन्न पदार्थों एवं क्रिया-कलापों का सूत्र-संचालन होता है।

शब्द की महत्ता को अध्यात्म-शास्त्र आरंभ से ही प्रतिपादित करते रहे हैं। नादयोग का पूरा ढाँचा इसी निमित्त खड़ा किया गया है, कि सूक्ष्म शरीर के संयंत्र को विकसित करके दिव्य ध्वनियों को पकड़ने, समझने में सफलता प्राप्त की जा सके। इस आधार पर प्रकृतिगत उनके भौतिक हलचलों को जाना जा सकता है। जो सामान्य मनुष्य के ज्ञान-क्षेत्र से ऊपर की हैं। इसके अतिरिक्त परा-प्रकृति से संबंधित सूक्ष्म जगत् की वे सचेतन हलचलें हैं, जो ध्वनि रूप में परिभ्रमण करती है और समस्त प्राणिजगत् को प्रभावित करती है। नाद-योग के अभ्यास से आत्म चेतना को परिष्कृत और सूक्ष्म-शरीर की कर्णेंद्रिय तन्मात्रा 'शब्द' को परिष्कृत किया जाता है। इस आधार पर अदृश्य एवं अविज्ञात से संपर्क साधा जाता है और अतींद्रिय ज्ञान प्राप्त करने का लाभ उठाया जाता है।

नाद-योग के लिए स्थान और समय इस तरह का चयन किया जाता है, जहाँ अधिकतम शांत-एकांत हो। किन्हीं शीशे की जालियों से प्राकृतिक दृश्य दिखाई दे सके, तो मन को विराट् अंतराल में दूर तक उड़ने का अवसर मिलता है। प्रारंभ में मीठे लहरदार और शास्त्रीय नादों के रिकार्ड ग्रामोफोन पर बजाएँ। रिकार्ड थोड़ी देर तक चलने वाला हो। वीणा, एकतार, बैंजो, सरोद, सारंगी, बांसुरी, यामौहर ऐसे लहराने वाले नाद और धुनें रहें, ताकि मन में नृत्य करने की प्रवृत्ति उमड़े। इस ध्वनि पर मन को एकाग्र करें, इसके बाद बंद कर दें और उस नाद पर भावनाओं से ध्यान करें। इस अभ्यास से कर्णेंद्रियों की सूक्ष्म शक्ति जाग्रत् होती है, धीरे-धीरे स्वप्नों में गीत-संगीत सुनाई देने लगते हैं और प्रकृति में व्याप्त नादों का आभास होने लगता है।

घंटा बजाकर उसके नाद और थरथरी पर ध्यान जमाकर, रेडियो पर प्रातः या सायंकाल प्रसारित होने वाले भक्ति गीतों के साथ भी ध्वनि-तरंगों पर मन को लय करने का अभ्यास किया जा सकता है। स्वर की लहरों में मन को लय करने से ही नाद-साधना की पूर्ति होती है। इस संबंध में ब्रह्मवर्चस्, शांतिकुंज, हरिद्वार के किन्हीं साधना-सत्र में भी आकर प्रत्यक्ष मार्गदर्शन किया जा सकता है। कारण शरीर की श्रवण शक्ति के विकास के लिए यह साधनाएँ व्यक्ति की परिस्थिति के अनुरूप यहाँ बता दी जाती हैं।

सूक्ष्म और कारण शरीरों में सन्निहित श्रवण-शक्ति को यदि विकसित किया जा सके, तो अंतरिक्ष में निरंतर प्रवाहित होने वाली उन ध्वनियों को भी सुना जा सकता है, जो चमड़े से बने कानों की पकड़ से बाहर है। सूक्ष्म-जगत् की हलचलों का आभास इन ध्वनियों के आधार पर हो सकता है।

कराहने की आवाज सुनकर किसी के शोक-ग्रस्त होने, दर्द से छटपटाने, सताये जाने आदि की स्थिति का, दूरी का, नर-नारी का, बाल-वृद्ध का अनुमान लगा लिया जाता है, उसी प्रकार कर्णेंद्रिय की पकड़ से बाहर की सूक्ष्म-ध्वनियों को यदि सुना जा सके, तो विश्व में विभिन्न स्थानों पर विभिन्न स्तर की घटित होने

वाली घटनाओं का विवरण जाना जा सकता है, संभावनाओं का पता लगाया जा सकता है तथा लोक-लोकांतरों में हो रही हलचलों को समझा जा सकता है। सर्वसाधारण के लिए अविज्ञात जानकारियाँ सूक्ष्म शरीर की कर्णेंद्रिय के विकास द्वारा नितांत संभव हैं।

न्यूजर्सी अमेरिका की वेल टेलीफोन प्रयोगशाला के इंजीनियरों और वैज्ञानिकों ने एक ऐसे 'भवन' का निर्माण किया, जो पूरी तरह शब्द-प्रूफ था, अर्थात् उसके अंदर बैठने वाले को बाहर की कैसी भी, कोई भी ध्वनि सुनाई नहीं पड़ सकती थी। वैज्ञानिकों को अनुमान था कि उस समय निस्तब्ध नीरवता का आभास होगा, पर जब एक व्यक्ति को प्रयोग के तौर पर उसके अंदर बैठाया गया, तो उसे यह सुनकर अत्यंत आश्चर्य हुआ कि विचित्र प्रकार की ध्वनियाँ उसके कानों में गूँजने लगीं। एक ध्वनि किसी के सीटी बजाने की थी, एक ध्वनि प्रेस-मशीन चलने की तरह धड़-धड़ की थी, एक ध्वनि चटाचट चटकने की-सी। पहले तो वह व्यक्ति डरा, पर पीछे ध्यान देने पर मालूम हुआ कि सीटी की आवाज नसों में दौड़ने वाले रक्त-प्रवाह की ध्वनि थी। आमाशय में पाचन-रसों की चट-चट तथा हड्डियों की कड़-कड़ाहट की ध्वनियाँ भी अलग-अलग सुनाई पड़ने लगी, मानों शरीर न हो, पूरा कारखाना ही हो।

सामान्यतः यह ध्वनि हर व्यक्ति के शरीर से होती है, पर अपने कानों की बाह्यमुखी संवेदनशीलता और एकाग्रता की कमी के कारण कोई भी उन्हें सुन नहीं पाता। पर यदि अभ्यास किया जाये और सूक्ष्म कानों की शक्ति जगाई जा सके, तो अनंत ब्रह्मांड में होने वाली हलचल, पृथ्वी के चलने की आवाज, सौरघोष, उल्काओं की टक्कर के भीषण निनाद, मंदाकिनियों के बहने का स्वर, जीव- जंतुओं के कलरव—सब कुछ किसी भी स्थान में बैठकर उसी प्रकार सुने जा सकते हैं, जिस प्रकार बेल, टेलीफोन, लैबोरेटरी के प्रयोग के समय।

योगी पातंजलि ने लिखा है—**'ततः प्रातिभ श्रावण** .... **जायन्ते'** (योग० ३। ३६) अर्थात् 'स्वार्थ-संयम के अभ्यास से प्रातिभ अर्थात् भूत और भविष्य-ज्ञान दिव्य और दूरस्थ शब्द सुनने की सिद्धि प्राप्त होती है।' योग विभूति में लिखा है—

शब्दार्थ प्रत्ययानामितरेतराध्यासात् संकरस्त, प्रतिभाग संयमात् सर्वभूतरुतज्ञानम्'। —योग० ३.२७

अर्थात् 'शब्द, अर्थ और ज्ञान के अभ्यास से अभेद भासता है और उसके विभाग में संयम करने से सभी प्राणियों के शब्दों में निहित भावनाओं का भी ज्ञान होता है।' यह सूत्र-सिद्धांत सूक्ष्म कर्णेंद्रिय की महान् महत्ता का प्रतिपादन करते हैं और बताते हैं कि जब तक मनुष्य के पास ऐसा क्षमता-संपन्न शरीर है, जिसके अंदर-विद्यमान विभूतियों का उपयोग करके, वह उसे प्राप्त कर सकता है, जिसके लिए उसे प्रायः तरसते ही रहना पड़ता है।

नादयोग सूक्ष्म शब्द-प्रवाह को सुनने की क्षमता विकसित करने का साधना-विधान है। कानों के बाहरी छेद बंद कर देने पर उनमें स्थूल शब्दों का प्रवेश रुक जाता है। तब ईथर से चल रहे ध्वनि-कंपनों को उस नीरवता में सुन-समझ सकना सरल हो जाता है। नादयोग के अभ्यासी आरंभ में कई प्रकार की दिव्य-ध्वनियाँ कानों के छेद बंद करके, मानसिक एकाग्रता के आधार पर सुनते हैं। शंख, घड़ियाल, मृदंग, वीणा, नफीरी, नूपुर जैसी आवाजें आती हैं और बादल गरजने, झरना झरने, आग जलने, झींगुर बोलने जैसी क्रमबद्ध ध्वनियाँ भी सुनाई पड़ती हैं। आरंभ में यह शरीर के अंतरंग में हो रही हलचलों की ही प्रतिक्रिया होती है, पर पीछे दूरवर्ती घटनाक्रमों के संकेत प्रकट करने वाली अधिक सूक्ष्म आवाजें भी पकड़ में आती हैं। अनुभव के आधार पर उनका वर्गीकरण करके यह जाना जा सकता है, कि इन ध्वनि-संकेतों के साथ कहाँ, किस प्रकार का, किस काल का घटना क्रम संबद्ध है ? प्रारंभिक अभ्यासी भी अपने शरीरगत अवयवों की हलचल, रक्त-प्रवाह, हृदय की धड़कन, पाचन-संस्थान आदि की जानकारी

उसी भाँति प्राप्त कर सकता है, जिस तरह की डॉक्टर लोग स्टेथिस्कोप आदि उपकरणों से हृदय की गति, रक्त-चाप आदि का पता लगाते हैं। अपने ही नहीं दूसरों के शरीर की स्थिति का विश्लेषण इस आधार पर हो सकता है और तदनुकूल सही निदान विदित होने पर सही उपचार का प्रबंध हो सकता है।

'सूक्ष्म शरीर की कर्णेंद्रिय को विकसित करके संसार में घटित होने वाले घटनाक्रम को जाना जा सकता है। कारण-शरीर का संबद्ध चेतना जगत् से है। योगों की मनःस्थिति के कारण उत्पन्न होने वाली अदृश्य ध्वनियाँ जिसकी समझ में आने लगें, वह मानव-प्राणी की, पशु-पक्षियों और जीव-जंतुओं की मनःस्थिति का परिचय प्राप्त कर सकता है। इस प्रकार बिना उच्चारण के एक मन से दूसरे मन का परिचय आदान-प्रदान होता रह सकता है। विचार संचालन-विद्या के ज्ञाता जानते हैं कि मनःस्थिति के अनुसार भावनाओं के उतार-चढ़ाव में एक विचित्र प्रकार की ध्वनि निर्मित करते हैं और उसे सुनने की सामर्थ्य होने पर मौन रहकर ही दूसरों की बात अंतःकरण के पर्दे पर उतरती हुई अनुभव की जा सकती है और अपनी बात दूसरों तक पहुँचाई जा सकती है।

'कारण-शरीर' की कर्णेंद्रिय साधना से दैवी संकेतों के समझने, ईश्वर के साथ वार्तालाप और भावनात्मक-आदान-प्रदान करने की सामर्थ्य हो सकती है। साधनात्मक पुरुषार्थ करते हुए अपने इन दिव्य-संस्थानों को विकसित करना—अपूर्णता से पूर्णता की ओर बढ़ना, यही नादयोग साधना का उद्देश्य है।

कृष्ण द्वारा रात्रि की नीरवता में वंशी बजाए जाने और गोपियों के घर-बार छोड़कर उस रास-आह्वान के लिए निकल पड़ने का सविस्तार वर्णन भागवत आदि पुराणों में वर्णित है। यह व्यावहारिक, सामाजिक, भौतिक व्यवस्था के सर्वथा प्रतिकूल होते हुए भी अध्यात्म परंपरा के पूर्णतया अनुकूल भी है। वस्तुतः कथा-गाथाओं में रहस्यमय पहेली की तरह गूढ़ आध्यात्मिक रहस्यों का ही उद्घाटन किया गया है। रास-लीला के पीछे नादयोग की व्याख्या विवेचना ही सन्निहित है। भगवान् वंशी बजाते हैं—मधुर रस

चखाने का आह्वान करते हैं। गोपियाँ समस्त सांसारिक-बंधनों को तोड़कर उस ओर दौड़ पड़ती हैं। संकेत आह्वान का स्वागत करती है और उसी के लिए आकुल-व्याकुल होकर अपना समर्पण कर देती है। अपना आपा खोकर दिव्य ध्वनि के साथ थिरकना, नाचना आरंभ कर देती हैं। यही तो रास लीला है। कृष्ण अर्थात् परमात्मा, वंशी-ध्वनि अर्थात् ईश्वरीय प्रयोजनों के लिए चल पड़ने का संकेत, गोपियाँ अर्थात् आत्मा की भौतिक एवं आत्मिक संपदाएँ, रास-नृत्य अर्थात् दिव्य संकेतों के अनुरूप कठपुतली जैसे भाव-विभोर आचरण हैं।

रासलीला में सम्मिलित गोपियों के आनंद-मुग्ध होने का तथ्य सर्वविदित है। उसी का स्थूल रूप देखने-दिखाने के लिए जहाँ-तहाँ रासलीला के अभिनय किए जाते हैं। यों एक पुरुष के साथ इतनी नारियों का कामुक नृत्य न तो अभिनंदनीय हो सकता है और न अभिनीत। फिर भी आत्मा और परमात्मा के बीच आदान-प्रदान का जो भाव-भरा अलंकारिक चित्रण रासलीला में किया गया है, वह पहेली जैसा लगते हुए भी अर्थपूर्ण और तथ्यपूर्ण ही कहा जायेगा। रास की प्रधान नायिका राधा है और अन्य सभी सखियाँ-सहेलियाँ उसके साथ पूर्ण स्नेह-सहयोग के साथ सहनृत्य में तल्लीन होती हैं।

राधा अर्थात् आत्मा—उनकी सहयोगिनी सखियाँ—अंतरंग की सत्प्रवृत्तियाँ—बौद्धिक विभूतियाँ और सांसारिक संपदाएँ—क्षमताएँ, प्रतिभाएँ—यह सभी आत्मा की आकांक्षा में स्नेहित सहयोग देती हैं। कोई अवरोध उत्पन्न नहीं करतीं, अर्थात् आत्मा के परमात्मा से मिलने के सदुद्देश्य—सत्प्रयत्नों को सफल बनाने के लिए अपना पूर्ण समर्पण—समग्र नियोजन प्रस्तुत कर देती हैं। आत्मा की दिव्य-आकांक्षा की पूर्ति के लिए उनका पूरा-पूरा समर्थन मिलता है। यह स्थिति प्राप्त हो सके, तो हर आत्मा को—हर राधा को—रासलीला का दिव्य-आनंद मिल सकता है। आत्मा और परमात्मा के मिलन का ब्रह्मानंद उपलब्ध हो सकता है।

नादयोग में कान को सूक्ष्म चेतना की दिव्य-ध्वनियाँ सुनाई पड़ती हैं। कई बार ये अतिमंद होती हैं। कई बार कुछ प्रखर। इनमें प्रायः कृष्ण की वंशी जैसी, सर्प पकड़ने में काम आने वाले बीन जैसी ध्वनियाँ रहती हैं। रास में प्रयुक्त वेणुनाद की चर्चा ऊपर हो चुकी है। कुमार्गगामी—भौतिक तृष्णा और वासना का विष पिंड मन—एक प्रकार से विषधर सर्प है। उसे भी आनंद उल्लास की—दिव्य प्रेरणाओं के अनुगमन के रूप में लहराने का अवसर इस वेणु की ध्वनि सुनने से मिल सकता है। सँपेरा विषधर सर्पों को पकड़ने के लिए बीन बजाता है। ज़ब वह लहराने लगता है, तो उसे चुपके से पकड़कर पिटारे में बंद कर लेता है। मन के निग्रह में—प्राणों के निरोध में—नादयोग का ध्वनि-प्रवाह बहुत सफल रहता है। दिव्य-ध्वनि श्रवण के साथ-साथ उपरोक्त दो विचार-धाराओं का अदल-बदल कर समन्वय करना चाहिए। भगवान् के वेणुनाद पर राधा और उसकी सखियों का रासनृत्य करना और मन रुपी सर्प का इस दिव्यनाद में तन्मय होकर अपना आत्म-समर्पण कर बैठना, यही है नादयोग की विधि-साधना के साथ जुड़ा हुआ अत्यंत महत्त्वपूर्ण तत्त्व दर्शन।

वंशी और बीन के अतिरिक्त और भी कई प्रकार की ध्वनियाँ नादयोग के साधकों को सुनाई पड़ती हैं। इनकी संगति इस प्रकार बिठाई जा सकती है—भगवती सरस्वती अपनी वीणा-झंकृत करते हुए ऋतंभरा प्रज्ञा और अनासक्त भूर्मा के मृदुल मनोरम तारों को झनझना रही है और अपनी अंतःचेतना में वही दिव्य-तत्त्व उभर रहे हैं। भगवान् शंकर का डमरू बज रहा है। उससे प्रलय के मरण संकेत आ रहे हैं और सुझाया जा रहा है कि इस नश्वर काया का अंत करने वाला तांडव किसी भी क्षण सम्मुख आ सकता है, इसलिए प्रमाद से न उलझा जाए, लक्ष्य की प्राप्ति में आलस्य एवं उपेक्षा भाव न वरता जाए। माया-मोह छोड़कर यथार्थता को समझा जाए। शंखनाद की ध्वनि को महाभारत के पांचजन्य का, महाकाल के भैरवनाद का उद्घोष माना जाए और अनुभव किया जाए कि अब महाप्रयाण का ऐसा समय आ पहुँचा हैं, जिसमें आनाकानी या

सोच-विचार करने की गुंजाइश नहीं है। युग की कर्तव्य की पुकार गूंज रही है और उभर रही है कि अविलंब जीवनोद्देश्य की दिशा में कदम बढ़ाया जाए। बिजली की कड़क, दावानल की धू-धू, बादलों की गर्जन, समुद्र का तर्जन इस संकेत को लेकर आते हैं कि अपनी गतिविधियों का कायाकल्प होना ही चाहिए। पशु-स्तर को निरस्त करके दिव्य-स्तर अपनाया ही जाना चाहिए और उस उलट-पुलट में जो उफान प्रस्तुत होते हैं, उनका सामना किया ही जाना चाहिए। कभी झिल्ली की झंकार, कभी चिड़ियों की चहचहाहट के शब्द सुनाई पड़ते हैं, इन्हें छोटे जीवों द्वारा मानवी-प्रमाद को हिला देने वाला उद्बोधन समझा जाए। जब इतने छोटे जीव अपने नियत-नियमित आनंद बिखेरने वाले क्रिया-कलाप में निरत रहते हैं, तो मनुष्य के लिए यह कैसे शोभनीय होगा कि वह जीवनोद्देश्य के साथ जुड़े हुए महान् कर्तव्य का परित्याग करके मात्र पेट और प्रजनन के लिए जीवन संपदा को कौड़ी मोल गँवा देने की मूर्खता अपनाए ?

नादयोग में कितने प्रकार की ध्वनियाँ सुनाई पड़ सकती हैं ? इनकी कोई सीमा नहीं। प्रायः परिचित ध्वनियाँ ही सुनाई पड़ती हैं, सो सूक्ष्मदर्शी साधक उनके पीछे उच्च संकेतों को विवेक-बुद्धि के द्वारा सहज संगति बिठा सकते हैं। कोयल की कूकन, मुर्गे की बाँग, मयूर की पीक, सिंह की दहाड़, हाथी की चिंघाड़, शब्द सुनाई पड़े तो उनमें इन प्राणियों को उच्चारण समय की मनःस्थिति की कल्पना करते हुए अपने लिए प्रेरक संकेतों का तालमेल बिठाया जा सकता है। कई बार रुदन, क्रंदन, हर्षोल्लास, अट्टहास, उच्छ्वास जैसी ध्वनियाँ सुनाई पड़ती हैं, उसे अपनी अंतरात्मा का संतोष समझा जा सकता है। कुमार्गगामी गतिविधियों से असंतोष और सत्प्रवृत्तियों का संतोष स्पष्ट है। आत्म-निरीक्षण करते हुए आत्मा को समय-समय पर अपनी भली-बुरी गतिविधियों पर संतोष-असंतोष प्रकट करने के अवसर आते हैं, इन्हीं की प्रतिध्वनि, हर्ष-क्षोभ व्यक्त करने वाले स्वरों में सुनाई पड़ती रहती है। किस ध्वनि के पीछे क्या संकेत, संदेश, तथ्य हो सकता है, उसे नादयोगी

की सहज बुद्धि ही समयानुसार निर्णय करती चलती है। उसकी विस्तृत चर्चा यहाँ अभीष्ट नहीं। तथ्य इतना भर है कि इन दिव्य-ध्वनियों में किसी न किसी स्तर की प्रेरणाएँ होती हैं और उन सबका प्रयोजन एक ही रहता है कि हमें आत्मा की स्थिति से ऊपर उठकर उच्च भूमिका के लिए द्रुतगति से अग्रसर होना चाहिए, साहसपूर्ण कदम बढ़ाना चाहिए।

कानों के छिद्र बंद करके अंतर्गत की दिव्य-ध्वनियाँ सुनने की साधना जब परिपक्व होने लगती है तो भावोत्कर्ष क्षेत्र से आगे बढ़कर सुविस्तृत अंतरिक्ष में संव्याप्त हलचलों को समझनें का अवसर मिलता है। इस संसार को प्रभावित करने वाली अगणित बाह्य प्रेरणाओं के प्रवाह बहते रहते हैं। उनके स्पंदन हमारी कर्णेंद्रिय से शब्दरूप में टकराते हैं। उन्हें पहचानने और पकड़ने की सफलता, साधना में परिपक्वता आने के साथ-साथ सहज ही बढ़ने लगती है और यह प्रतीत होने लगता है कि सूक्ष्म-जगत् में क्या हो रहा है और क्या होने जा रहा है ? किसी व्यक्ति-विशेष, क्षेत्र, देश अथवा लोक के संबंध में इस प्रकार की सही स्थिति का पूर्वाभास होने लगता है। अविज्ञात को ज्ञात-स्तर पर उतारने में नादयोग की साधना बहुत ही उपयोगी एवं प्रभावशाली होती है। यों शब्द, रूप, रस, गंध, स्पर्श की किसी भी प्रक्रिया के आधार पर बनी हुई साधना-पद्धति से भी वही प्रयोजन सिद्ध हो सकता है, पर नादयोग का इसी प्रयोजन के लिए अपना अत्यधिक महत्त्व है।

नाद-संकेत वे सूत्र हैं, जिनके सहारे परमात्मा के विभिन्न शक्ति स्रोतों के साथ हमारे आदान-प्रदान संभव हो सकते हैं। टेलीग्राम, टेलीफोन, वायरलैस, टेलीविजन पद्धतियों का आश्रय लेकर हम दूरवर्ती व्यक्तियों के साथ अनुभूतियों का आदान-प्रदान करते हैं।

कुंडलिनी महाविज्ञान नाद साधना की प्रशस्ति से भरा पड़ा है। स्थान-स्थान पर साधना-विधान, महत्ता और फलश्रुति के श्लोक भरे पड़े हैं, उससे इस साधना के प्रभावी स्वरूप का बोध होता है।

कुंडलिनी जागरण और नादयोग का परस्पर घनिष्ट संबंध बताते हुए कहा गया है—

कला कुंडलिनी चैव नाद शक्ति समन्विता।

—षट्चक्र निरूपण

कला कुंडलिनी नाद शक्ति से संयुक्त है।

कुंडल्येव भवेच्छक्तिस्तां तु संचालयेत् बुधः।
स्वस्थानादाभ्रुवोर्मध्यं, शक्तिचालनमुच्यते ।।

—योग कुंडल्यूपनिषद्-७

बुद्धिमान् व्यक्ति को चाहिए, कि वह उस सोई हुई अपनी आत्म शक्ति को चैतन्य करे, गतिशील करे। मूलाधार से स्फूर्ति तरंग उठकर भ्रूमध्य में दिव्य नाद की अनुभूति (श्रवण) कराने लगे, तभी समझना चाहिए कि कुंडलिनी शक्ति जागृत्-संचालित हो गई है।

श्री आदिनाथ के बतलाए हुए सवा करोड़ 'लय' के प्रकार सर्वोत्कर्ष से विद्यमान हैं, उन सब लयों में से नादानुसंधान को ही मुख्य मानते हैं।

लये नादे यदा चित्तं रमते योगिनो भृशम्।
विस्मृत्य सकलं बाह्यं नादेन सह शाम्यति।।

—शिव संहिती

जब योगी का चित्त उस नाद में निरंतर रमण करेगा, तब सब प्रकार के विषय से स्मरणरहित होकर चित्त समाधि में 'लय' हो जायेगा।

नासनं सिद्धसदृशं न कुंभसदृशं बलम्।
न खेचरीसमा मुद्रा न नाद सदृशो लयः।।

—शिव संहिता ५।४५

सिद्धासन के समान कोई आसन नहीं, कुंभक के समान कोई बल नहीं, खेचरी के समान मुद्रा नहीं और नाद के समान लय नहीं।

भगवान् शंकराचार्य ने भी 'योग तारावली' में नाद तत्त्व की प्रशंसा की है—

"सदा शिवोक्तानि सपादलक्ष्य-
लयावधामानि वसन्ति लोके।
नादानुसंधान समाधिमेकं
मन्यामहे मान्यतमं लयानाम्।।
नादानुसंधान नमोऽस्तु तुभ्यं
त्वां मन्महे तत्वपदं लयानाम्।
भवत्प्रसादात् पवनेन सार्धं।
विलीयते विष्णुपदे मनो मे।।

भगवान् शिव ने मन के लय के लिए सवा लक्ष साधनों का निर्देश किया है, परंतु उन सब में नादानुसंधान सुलभ और श्रेष्ठ है। हे नादानुसंधान ! आपको नमस्कार करता हूँ। आप परम-पद में स्थिति लाभ कराते हैं। आपकी कृपा से मेरे प्राण और मन दोनों विष्णु के परम पद में लीन हो जाएँगे।

न नादेन बिना ज्ञानं न नादेन बिना शिवः।
नादरूपं परं ज्योतिर्नाद रूपी परो हरिः।।

—योग तरंगिणी

नाद के बिना ज्ञान नहीं होता, नाद के बिना शिव नहीं मिलते, नाद के बिना ज्योति का दर्शन संभव नहीं, नाद ही परब्रह्म है।

हठयोग प्रदीपिका में नादयोग का महत्त्व एवं प्रतिफल बताते हुए उसे साधनाओं में अत्यंत ऊँचा स्थान दिया है। निम्न श्लोक उसी के पृष्ठों से लिए गये हैं।

नादश्रवणतः क्षिप्रमंतरंग भुजंगमः।
विस्मृत्य सर्वमेकाग्रः कुत्रचिन्न हि धावति।।

यह मन रूपी सर्प-नाद को श्रवण करने से शीघ्र ही संपूर्ण संसार को भूलकर, एकाग्र होकर फिर विषयों की तरफ नहीं जाता है।

सदा नादानुसंधानत्क्षीयन्ते पापसंचयाः।
निरंजने विलीयते निश्चितं चित्तमारुतौ।।

—ह० प्र० ४।१०५

सदा नाद के अनुसंधान करने से संचित पापों के समूह भी नष्ट हो जाते हैं और उसके अनंतर निर्गुण एवं चैतन्य ब्रह्म में मन व प्राण दोनों निश्चय ही विलीन हो जाते हैं।

अभ्यस्यमानो नादोऽयं बाह्यमावृणुते ध्वनिम्।
पक्षाद्विपक्षेपमखिलं जित्वा योगी सुखी भवेत्।।

—ह० प्र० ४।८३

अभ्यास किया गया यह नाद बाहर की ध्वनि को भी ढक देता है, इस प्रकार एक पक्ष में ही योगी चित्त की समस्त चंचलता को जीतकर सुखी हो जाता है।

दिव्यदेहश्च तेजस्वी दिव्यगंधस्त्व रोगवान्।
संपूर्णहृदयः शून्य आरंभो योगवान्भवेत्।।

—ह० प्र० ४।७

हृदयाकाश में नाद के आरंभ होने पर प्राण वायु से पूर्ण हृदय वाला योगी रूप, लावण्य आदिकों से युक्त दिव्य देह वाला हो जाता है। वह प्रतापी हो जाता है और उसके शरीर से दिव्य गंध प्रकट हुआ करती है तथा वह योगी रोगों से भी रहित हो जाता है।

अंतरंगस्य यमिनो वाजिनः परिघायते।
नादोपास्तिरतो नित्यमवधार्या हि योगिना।।

—ह० प्र० ४।६५

नादयोगी के मन रूपी घोड़ों के लिए अश्वशाला दरवाजा के अर्गला के समान हैं। इसलिए योगी को प्रतिदिन नाद की उपासना करनी चाहिए।

नादयोग के अभ्या से मनोनिग्रह जैसा कठिन कार्य सरल हो जाता है। मन के एकाग्र होने पर योगाभ्यास की सफलता निर्भर है। चित्त की चंचलता ही साधना की प्रगति में प्रमुख बाधा है। नादानुसंधान से यह बाधा सरलतापूर्वक हल हो जाती है।

नादमेवानुसंदध्यान्नादे चित्तं विलीयते।
नादासक्तं सदा चित्तं विषय न हि कांक्षति।।

—नाद बिंद्पनिषद्

नादानुसंधान से चित्त शांत हो जाता है। उस साधना में लगा हुआ चित्त विषयों की आकांक्षा नहीं करता।

नादयोग का अभ्यास कैसे करना चाहिए ? इसका उत्तर देते हुए शिव संहिता और हठयोग प्रदीपिका में दोनों कान, दोनों नेत्र एवं दोनों नासिका छिद्र बंद करने की विधि बताई गई है। ऐसी दशा में साँस मुख से ही लिया जा सकता है। कहा गया है—

अंगुष्ठाभ्यामुभे श्रोत्रे तर्जनीभ्यां द्विलोचने।
नासारंध्रे च मध्याभ्याम् नामाभ्यां मुखं दृढम्।।
निरुध्य मारुतं योगी सदैव कुरुते भृशम्।
तदा तत्क्षणमात्मानं ज्योति रूपं स पश्यति।।

—शिव संहिता

दोनों हस्त अँगूठों से दोनों कर्ण बंद करें और दोनों तर्जनी से दोनों नेत्रों को, दोनों मध्यमा व अंगुलियों से दोनों नासारंध्र को बंद करें और दोनों अनामिका अँगुली और कनिष्ठा से मुख को बंद करें। यदि इस प्रकार योगी वायु को निरोध करके इसका बारंबार अभ्यास करे तो आत्मा ज्योति-स्वरूप का हृदयाकाश में भान होता है।

कर्णौपिधाय हस्ताभ्यां यं श्रृणोति ध्वनिं मुनिः।
तत्र चित्तं स्थिरीकुर्याद्यावत्स्थिरंपदं व्रजेत्।।

—हठयोग ४।८२

मननशील योगी दोनों हाथों से दोनों कानों को बंद कर, जिस ध्वनि को सुनता है, जब तक स्थिर पद को प्राप्त न हो जाए, तब तक उस ध्वनि में चित्त को स्थिर करे।

श्रवणपुटनयनयुगलघ्राणमुखानां निरोधनं कार्यम्।
शुद्ध सुषुम्नासरणौ स्फुटममलः श्रूयते नादः।।

—हठयोग ४।६८

दोनों कान, आँख, नासिका और मुख इन सबका निरोध करना चाहिए, तब शुद्ध सुषुम्ना नाड़ी के मार्ग में शुद्ध नाद प्रगट रूप से सुनाई पड़ने लगता है।

'योग रसायन' में सभी छेद बंद करने की आवश्यकता नहीं समझी गई। मात्र कान के छेद बंद करने को ही कहा गया है। यदि साधक चाहे तो छेदों को बीच-बीच में खोलता भी रह सकता है; लगातार बंद रखने की आवश्यकता नहीं है। इस प्रकार एक दक्षिण कान से ही नाद-श्रवण का भी परामर्श दिया गया है।

पद्मासनं समास्थाय स्वस्तिकं वा यथा सुखम्।
कर्णरंध्रयुगं पश्चादंगुलिभ्यां निरोधयेत्।।

—योग रसायनम्

पद्मासन या स्वस्तिक आसन में सुखपूर्वक बैठकर दोनों कर्णरंध्रों को उँगलियों से बंद कर लें।

कर्णयोस्त्वेकतानेन रोधनं नैव कारयेत्।
त्यक्त्वात्यक्त्वांगुलिंमध्यनादाभ्यासं समाचरेत्।।

—योग रसायनम्

दोनों कानों को लगातार बंद नहीं किए रहना चाहिए। अँगुली बीच-बीच में छोड़ते रहकर नाद का अभ्यास करना चाहिए।

निमील्य नयने चित्तं कृत्वैकाग्रमनन्यधीः।
श्रणुयाद्दक्षिणे कर्णे नादमंतर्गत शुभम्।।

—योग रसायनम्

नयन निमीलित कर, चित्त को एकाग्र कर अनन्य बुद्धि से दाहिने कान में शुभ नाद सुनना चाहिए।

श्रूयते प्रथमाभ्यासे ध्वनिर्नादस्य मिश्रितः।
ततोभ्यासे स्थिरी भूते श्रूयते तु पृथक्-पृथक्।।

—योग रसायनम्

प्रथमतः अभ्यास के समय ध्वनि-नाद को मिश्रित रूप में ही सुनना चाहिए। जब अभ्यास दृढ़ हो जाए, तो पृथक्-पृथक् सुनना चाहिए।

नाद-श्रवण की पूर्णता अनाहत ध्वनि की अनुभूति में मानी गई है। साधक अन्य दिव्य-ध्वनियों को सुनते-सुनते अंत में अनाहत लक्ष्य तक जा पहुँचता है।

ठीक इसी प्रकार ईश्वर के विभिन्न शक्ति केंद्रों के साथ इस विभिन्न ध्वनियों के माध्यम से संबंध मिला सकते हैं और इस स्थिति पर पहुँच सकते हैं कि अपनी बात ईश्वर तक पहुँचा सकें और उसके उत्तर प्राप्त कर सकें। इतना ही नहीं, यह ध्वनि-प्रवाह सड़कों के भार वाहनों के समान भी काम करते हैं। व्यक्ति की व्यथाएँ लादकर परमात्मा तक पहुँचाना और परमात्मा के अनुदान-वरदान लादकर व्यक्ति तक पहुँचना भी इन ध्वनियों के माध्यम से संभव हो सकता है। सिद्ध-पुरुष प्रायः ऐसे ही साधना-माध्यमों के आधार पर अपने को परमेश्वर के साथ जोड़कर अभीष्ट आदान-प्रदान का लाभ प्राप्त करते हैं।

भावनाशील मनःस्थिति के लोग नादयोग जैसी सुकोमल ध्वनियाँ भाव-संवेदनाओं के आधार पर सुन लेते हैं, पर यह हर किसी के लिए आवश्यक—अनिवार्य नहीं, कि वह उस प्रकार का, दिव्य-श्रवण कर ही सके, किन्हीं-किन्हीं को बहुत करने पर भी ऐसी कुछ अनुभूतियाँ नहीं होतीं। उन्हें निराश होने की तनिक भी आवश्यकता नहीं, वे अपनी अंतःचेतना को प्रत्यक्ष ध्वनियों के सहारे नादयोग जैसी स्थिति में ही उद्वेलित कर सकते हैं।

बिंदुयोग की प्रारंभिक साधना प्रकाश दीप के माध्यम से होती है। बराबर दीप-शिखा देखने, आँखें बंद करने और भ्रूमध्य भाग में ध्यान जमाने की आवश्यकता पड़ती है, जब वह भूमिका परिपक्व हो जाती है, तो प्रकाश स्वतः दृष्टिगोचर होता है और दीपक की आवश्यकता नहीं रहती। ठीक इसी प्रकार बाहरी वाद्य-यंत्रों का सहारा लेकर नाद-योग साधना क्रम आगे बढ़ाया जा सकता है। टेप-रिकार्डर पर संगीत-ध्वनियाँ भरी रह सकती हैं और उन्हें अपने साधना-कक्ष में सुनते हुए उपरोक्त अनुभूतियाँ जगाई जा सकती हैं। रिकार्ड-प्लेयर पर कोई भाव-भरे स्वर-प्रवाह सुने जा सकते हैं। ऐसा भी हो सकता है कि, एक केंद्र स्थान पर वाद्य यंत्र बजते रहें और समीपवर्ती कक्षों में साधनारत साधक उनका श्रवण-आनंद लेते हुए नादयोग का क्रम चलाते रहें। स्वयं भी इकतारा, सितार, जैसे मृदुल वाद्य यंत्र बजाते हुए उस स्थिति में आत्मविभोर हो सकते हैं।

झींगुरों की झंकार, चिड़ियों की चहचहाहट सुनने का प्रकृति सान्निध्य मिल सके, तो वह सहज वाद्य भी उपयुक्त रहेगा। इस प्रकार के वाह्य माध्यमों का आश्रय लेकर भी नादयोग की साधना हो सकती है और यदि भावना-स्तर प्रखर रहे तो उनसे भी उतना ही लाभ मिल सकता है, जितना कि कान के छेद बंद करके अंतः चेतना द्वारा दिव्य-नाद सुनने से उपलब्ध होता है।

विभिन्न व्यक्तियों के मनःस्तर विभिन्न प्रकार के होते हैं। किन्हीं की कल्पनाशीलता-भावुकता बढ़ी-चढ़ी होती है और वे दिव्य-रस, दिव्य-स्पर्श का आनंद अधिक कोमलतापूर्वक उठा सकते हैं, पर किन्हीं का भाव-स्तर काफी कठोर होता है, उन्हें बहुत प्रयास करने पर भी ऐसा कुछ अनुभव नहीं होता। इसमें संरचना मात्र का अंतर है। यह समझ बैठने का अवसर नहीं, कि इनमें से आत्मिक-प्रगति के क्षेत्र में कौन सफल और कौन असफल रह रहा है ?

साहसिकता और प्रखर-चेतना का एक स्तर है, जिसे धनविद्युत् आवेशों से बनी मनोभूमि कह सकते हैं। दूसरी मनोभूमि ऋण आवेशों से बनी होती है, उसमें भावुकता बढ़ी-चढ़ी होती है। संवेदनाएँ बहुत उठती हैं और भावनात्मक अनुभूतियाँ सहज ही उठती रहती हैं और कई बार वे उतनी प्रबल होती हैं कि निष्ठा को प्रत्यक्ष मूर्तिमान् बनने का सहज अवसर मिल जाता है। उन्हें कतिपय प्रकार की दिव्य अनुभूतियाँ निरंतर होती रहती हैं। मृदुल और कठोर संरचनाओं का अपना-अपना महत्त्व है। पर यह प्रायः होता जन्मजात है। उसमें सुधार यत्किंचित् ही हो पाता है।

जिनकी मानसिक-संरचना कोमल होगी— उन्हें ध्यान-धारणा के स्वल्प प्रयास ही बहुत कुछ अनुभव कराने लगेंगे, किंतु यदि संरचना कठोर हुई तो फिर कुछ अतिरिक्त अनुभव न हो सकेगा। इतना होने पर भी निराशा का कोई कारण नहीं। कठोर संरचना की स्थिति में अपने ध्यान-प्रयोजन स्थूल उपकरणों के माध्यम से जमानी चाहिए। दिव्य-दर्शन का प्रयोजन मूर्तियों अथवा चित्रों को देखकर हो सकता है। दीप-शिखा, सूर्य अथवा चंद्र का आश्रय

लेकर भी वही प्रयोजन पूरा हो सकता है। दिव्य-गंध के लिए कपूर, चंदन, इत्र आदि का प्रयोग हो सकता है। दिव्य-रस के लिए मुख में मिश्री या कोई मिठास–जैसी गोली रखी जा सकती है। स्पर्श के लिए, शीत या ताप के लिए ठंडे घड़े या गरम अग्नि उपकरण का प्रयोग हो सकता है और नादयोग के लिए स्वयं इकतारा जैसा कोई वाद्य यंत्र सीखकर अथवा टेपरिकार्डर आदि का उपयोग करके, वह प्रयोजन पूरा किया जा सकता है।

वायु का दबाव हलका होने और प्रशांत-सागर के पानी में नमक की मात्रा अधिक रहने से उसमें ऊँची लहरें नहीं उठतीं; किंतु अटलांटिक-सागर की स्थिति इससे भिन्न है, उसमें तूफानों की भरमार रहती है। कठोर मनः स्थिति की तुलना प्रशांत महासागर से और कोमल स्थिति को अटलांटिक समतुल्य समझा जा सकता है। दोनों में किसी को श्रेष्ठ-निकृष्ट नहीं ठहराया जा सकता है। दोनों की ही अपनी विशेषताएँ हैं और दोनों को ही अपना महत्त्व प्रकट करने तथा प्रगति-पथ पर अग्रसर होने का पूरा-पूरा अवसर है। साधना-पद्धति के उसके माध्यम-उपकरण में यह हेर-फेर किया जा सकता है कि व्यक्ति की चेतना स्थिति को ध्यान में रखते हुए उसे अंतर्मुखी अथवा बहिर्मुखी साधना-प्रक्रिया अपनाने के लिए कहा जाए।

● शब्द-ब्रह्म की साधना के दो चरण

स्थूल-जगत् में चल रही ध्वनि-धाराओं के लाभ-हानि से विज्ञान के विद्यार्थी परिचित हैं, कि अवांछनीय कोलाहल से अंतरिक्ष कितना विक्षुब्ध होता है और उसका भयानक प्रभाव प्राणियों और पदार्थों पर किस प्रकार विपत्ति बरसाता है ? बड़े शहरों और कारखानों से उत्पन्न कोलाहल के दुष्परिणामों को अब भली प्रकार समझा जाने लगा है और उसकी रोकथाम के लिए गंभीर विचार हो रहा है। दूसरी ओर उपयोगी ध्वनियों का लाभ उठाने के लिए भी एक से एक बढ़े-चढ़े आविष्कारों की श्रृंखला सामने आ रही है। रेडियो जैसे उपकरणों से संवाद-प्रेरणा आदि के कार्य लिए जा रहे

हैं। इस प्रकार ध्वनियों को समझने, पकड़ने, रोकने एवं प्रेषण के लिए भी भरपूर प्रयत्न हो रहे हैं। लाउडस्पीकर, टेपरिकार्डर जैसे यंत्रों की भरमार होती चली जा रही है। संगीत के प्रभाव से मनुष्यों की शारीरिक-मानसिक विकृतियों के उपचार होते हैं। उनसे सुखद संवेदनाएँ उभारने का काम लिया जाता है। इतना ही नहीं, दुधारू पशुओं का दूध बढ़ाने, बागवानी एवं कृषि कार्य के क्षेत्र में अधिक अच्छी सफलताएँ पाने के लिए लय और ताल-बद्ध ध्वनि-प्रवाहों का उत्साहवर्धक उपयोग हो रहा है। ध्वनि की शक्ति बारूद, भाप, बिजली, अणुशक्ति से अधिक ही आँकी गई हैं। प्रयत्नपूर्वक ऊर्जा उत्पन्न करना महँगा भी है और कष्ट साध्य भी। प्राकृतिक ऊर्जा जो ध्वनि-प्रवाह के रूप में सर्वत्र संव्याप्त है, उसको पकड़ने और उपयोग में लाने की आशा विज्ञान क्षेत्र में पुलकन उत्पन्न कर रही है। समझा जा रहा है कि इस क्षेत्र में जिस दिन विज्ञान को कुछ कहने लायक सफलता मिल सकेगी, उस दिन वह अब की अपेक्षा असंख्य गुणी शक्ति का अधिपति बन जायेगा।

यह तो हुई स्थूल जगत् में चलने वाले ध्वनि-प्रवाह की क्षमता एवं उपयोगिता की तनिक-सी झाँकी। इसके ऊपर सूक्ष्म जगत् है। उसमें चलने वाले ध्वनि-प्रवाह और भी अधिक महत्त्वपूर्ण हैं। यद्यपि वे मशीनों की पकड़ में नहीं आते, तो भी उनके अस्तित्व को चेतनात्मक उपकरणों की सहायता से समझा जा सकता है। समझा ही नहीं, उपयोग में भी लाया जा सकता है। यंत्रों से तो अब तक परमाणुस्वरूप तक नहीं देखा जा सका। उसकी प्रतिक्रियाओं को देखते हुए उनका स्वरूप कल्पित किया गया है। कल्पना की यथार्थता इसलिए मान्य की गई कि परमाणु से शक्ति उत्पादन की सफलता ने उसके समर्थन में साखी प्रस्तुत कर दी। सूक्ष्म-जगत् की ध्वनियों का विज्ञान भौतिक क्षेत्र की शब्द विद्या से कम नहीं—अधिक ही महत्त्वपूर्ण है। शरीर से प्राण की क्षमता अधिक होने का तथ्य सर्व स्वीकृत है। स्थूल जगत् की तुलना में सूक्ष्म-जगत् की गरिमा को भी ऐसी ही वरिष्ठता देनी होगी। ध्वनि-प्रवाह के संबंध में भी यही बात है। श्रवणातीत ध्वनियाँ विज्ञान जगत् में अपनी गरिमा

का प्रभाव समझा चुकी हैं। मनुष्य उनसे संपर्क जोड़ने के लिए बेतरह लालायित भी हो रहा है। सूक्ष्म-जगत् की ध्वनि-संवेदनाओं का महत्त्व श्रवणातीत ध्वनियों से उच्चस्तरीय है। भौतिक-जगत् की ध्वनियों से मात्र भौतिक प्रयोजन ही सिद्ध हो सकते हैं। सूक्ष्म जगत् के ध्वनि-प्रवाह यदि मनुष्य की समझ एवं पकड़ की सीमा में आ सके तो उसके चेतनात्मक लाभ प्रचुर मात्रा में उठाये जा सकते हैं।

तत्त्वज्ञानी, महामनीषियों को मात्र धर्मोपदेशक नहीं मानना चाहिए। वे सूक्ष्म-जगत् के स्वरूप को समझने और उसके साथ संबंध जोड़कर अतींद्रिय ज्ञान विकसित करने के प्रयास में संलग्न रहे हैं। इस प्रकार उनकी योग साधना एवं तपश्चर्या को आत्म कल्याण और सूक्ष्म विज्ञान के अधिकरण का दुहरा प्रयास कहा जा सकता है। हमारे ऋषि ज्ञानी भी थे और विज्ञानी थी। उनकी साधनाएँ आत्म-साक्षात्कार के लिए भी थीं और सूक्ष्म-जगत् में प्रवेश एवं अधिकार पाने के लिए भी। योग-साधना के साथ स्वर्ग-मुक्ति की भावनात्मक और ऋद्धि-सिद्धि की शक्तिपरक सफलताएँ जुड़ी हुई हैं।

योग-साधनाओं में सूक्ष्म ध्वनि क्षेत्र से संपर्क बनाने और लाभ उठाने के दो प्रयोग होते हैं। शब्द विद्या की दो धाराएँ मानी गई हैं। एक तो पकड़ने, समझने और उनके सहारे अविज्ञात संभावनाओं से परिचित रहने की है, जिसे नादयोग कहा गया है। नादानुसंधान की महिमा योग-शास्त्र में विस्तारपूर्वक बताई गई है। उनके सहारे सूक्ष्म जगत् की हलचलों की जानकारी प्राप्त करने का लाभ बताया गया है। यह कहने-सुनने में छोटी किंतु व्यवहार में बहुत बड़ी बात है। स्थूल-जगत् की वस्तु स्थिति से जो जितना परिचित है, उसे उतना ही बड़ा ज्ञानवान् कहा जाता है। इस जानकारी के आधार पर ही लोग विभिन्न क्षेत्रों में आशातीत सफलताएँ पाते हैं। जिसकी जानकारियाँ जितनी सीमित हैं, वे उतने ही पिछड़े समझे जाते और घाटे में रहते हैं। सूक्ष्म-जगत् की अद्‌भुत जानकारियों से परिचित रहने वाले नादयोगी अति महत्त्वपूर्ण वस्तु स्थिति समझ लेते हैं और

उनके सहारे खतरों से बचने एवं अवसरों से लाभ उठाने का प्रयत्न करते हैं। यह लाभ वे अपने लिए भी लेते हैं और दूसरों का भी हित-साधन करते हैं। नादयोग के सहारे देव तत्त्वों से, परब्रह्म से जो सीधा संबंध बनता है, उसका अंतःक्षेत्र के परिष्कार में कितना बड़ा योगदान मिलता है, यह अनुभव का विषय है। नादानुसंधान के प्रवीण अभ्यासी इस क्षेत्र में प्रवेश पाने से मिली सफलताओं से चमत्कारी परिणाम प्रस्तुत करते देखे गये हैं।

नादयोग की, सूक्ष्म-जगत् की दिव्य-ध्वनियों के साथ संपर्क बनाने की विद्या का महत्त्व बहुत ही है। इस विज्ञान का लाभ, स्वरूप एंव प्रयोग समझाते हुए ऋषियों ने बहुत कुछ कहा है।

नादबिंदूपनिषद् में वर्णन है—

ब्रह्मप्रवणसंधानं नादो ज्योतिर्मयः शिवः।
स्वयमाविर्भवेदात्मा मेघापार्येऽशुमानिव॥
यत्र कुत्रापि वा नादे लगति प्रथमं मनः।
तत्र तत्र स्थिरीभूत्वा तेन सार्धं विलीयते॥
सर्वचिन्तां समुत्सृज्य सर्वचेष्टा विवर्जितः।
नादमेवानुसंदध्यान्नादे चित्तं विलीयते॥
नियामनसमर्थोऽयं निनादो निशिताङ्कुशः।
नादोऽन्तरंगसारंगबन्धने वागुरायते॥

—३०।३८।४१।४५

अर्थात् नादयोग ज्योतिर्मय शिव है। वेदात्मा है। अशुभों का निवृत्ति कर्ता है। जब नाद के आधार पर मन स्थिर हो जाता है, तो वह परमात्मा में विलीन हो जाता है। इसलिए समस्त चिंताओं और हलचलों से छुटकारा पाकर शांतचित्त से नादानुसंधान करना चाहिए। इस प्रयास के फलस्वरूप जो दिव्य-शब्द श्रवण की अनुभूतियाँ होती हैं, उससे अंतक्षेत्र की दुर्बलताओं और विकृतियों की निवृत्ति होती है। दिव्य क्षमता जगती है।

वायवीय संहिता में नाद को शक्ति का उद्‌भव कर्ता बताते हुए कहा गया है—"**नादाच्छक्ति समुद्‌भवः**"।

अंतःकरण को निर्विषय बना लेने से उसकी दिव्य क्षमताएँ उभरती हैं। मन को निर्विषय बनाने के लिए नादयोग का अभ्यास अतीव श्रेयस्कर सिद्ध होता है।

मकरन्दं पिबन् भृंगों गन्धं नापेक्षते यथा।
नादासक्तं तथा चित्तं विषयान्न हि कांक्षते॥

—हठयोग ४।९०

अर्थ—जिस प्रकार पुष्पों के मकरंद को पान करने वाला भ्रमर दूसरे गंध को नहीं चाहता, उसी प्रकार नाद में आसक्त हुआ अंतःकरण अन्य विषयों की अभिलाषा नहीं करता है।

शब्द की, नाद की, अनुभूति यदि ठीक तरह होने लगे, तो उसके सत्परिणाम भौतिक और आत्मिक दोनों ही क्षेत्र के मनोरथों को पूरा करते हैं—

एकः शब्दः सम्यग्ज्ञातः सुष्टु प्रयुक्तः स्वर्गे लोके च कामधुग् भवति। —श्रुति

एक ही शब्द की तात्त्विक अनुभूति हो जाने से समस्त मनोरथों की पूर्ति हो जाती है।

यह नादानुसंधान श्रवण पक्ष हुआ। शब्द-विद्या का दूसरा पक्ष है—ध्वनि का अभीष्ट उद्देश्य के अनुरूप उत्पादन एवं प्रयोग। इसे मंत्रयोग कहते हैं। नादयोग से ग्रहण और मत्रयोग से प्रेषण की क्षमता उत्पन्न होती है। दोनों को मिला देने से ही एक ऐसा स्वर विज्ञान बनता है, जो सूक्ष्म-जगत् की ध्वनि- परिस्थितियों का उभय-पक्षीय उपयोग कर सकें। घरों में रहने वाले रेडियो यंत्र मात्र ध्वनि को पकड़ते हैं। इससे एकांगी प्रयोजन पूरा होता है। टेलीफोन की तरह ग्रहण-प्रेषण की उभय-पक्षीय व्यवस्था जहाँ होती है, वही पूर्णता मानी जा सकती है। नादयोग और मंत्रयोग की दोनों ही धाराएँ मिलकर, शब्द-ब्रह्म की समग्र क्षमता प्रस्तुत करती हैं। सुने

जाने वाले प्रवाह को शब्द-ब्रह्म और कहे जाने वाले को परब्रह्म की संज्ञा दी गई है—

आगमोक्तं विवेकात्त्व्य द्विधा ज्ञानं तथोच्यते।
शब्द ब्रह्मा ऽऽगममय परं ब्रह्म विवेकजम्।।

—अग्निपुराण

एक शब्द-ब्रह्म है दूसरा परब्रह्म। शास्त्र और प्रवचन से शब्द-ब्रह्म और विवेक, मनन, चिंतन से परब्रह्म की प्राप्ति होती है।

शब्द ब्रह्म, परब्रह्म भार्गेभ्यां शाश्वती तनु।

—भागवत

शब्द-ब्रह्म और परब्रह्म यह दोनों ही भगवान् के नित्य और चिन्मय शरीर हैं।

तामेतां वाचं यथा धेनुं वत्सनोपसृज्य प्रत्तां।
दुहीतैवमेव देवा वाचं सर्वान् कामान् अदुहन्।।

—जैमिनीयोपनिषद् ब्राह्मण

जिस प्रकार बछड़ा गाय का दूध पीता है, उसी प्रकार देव-पुरुष दिव्य-वाणी का आश्रय लेकर समस्त कामनाएँ पूर्ण करते हैं।

जिह्वा ज्या भवति कुल्मलं वाङ्-
नाड़ीका दन्तास्तपसाभिदिग्धाः।
तेभिर्ब्रह्मा बिध्यति देवपीयून्,
हृद्बलैर्धेनुर्भिर्देवजूतैः।।

—अथर्व० ५।१८।८

आत्मबल रूपी धनुष, तप रूपी तीक्ष्ण बाण लेकर तप और मन्यु के सहारे जब यह तपस्वी ब्राह्मण मंत्रशक्ति का प्रहार करते हैं, तो अनात्म तत्त्वों को दूर से ही वेध कर रख देते हैं।

वाक्य सिद्धिर्द्विधा प्रोक्ता शापानुग्रह कारिका।

—शक्ति पंचकम्

वाक् सिद्धि दो प्रकार की होती है—एक शाप देने वाली और दूसरी वरदान देने वाली।

यत्त आत्मनि तन्वां घोरमस्ति····
सर्वं तद्बाचाप हन्मो वयम्।

अथर्व० १।१८।३

तेरे शरीर में जो अनिष्ट हैं, उन्हेंमंत्रपूत वाणी सेहम नष्ट करेंगे। योग विभूति में शब्द-साधना से प्राणियों की अविज्ञात अंतः-स्थिति का परिचय प्राप्त करने की सिद्धि मिलने का उल्लेख है। कहा गया है—

"शब्दार्थ प्रत्ययानामित रेतराभ्यासात्।
संकरस्तम्प्रतिभाग संयनात् सर्व भूतरुत ज्ञानम्।।"

अर्थात् शब्द के तत्त्व का अभ्यास करने से अभेद भाषता है और प्राणियों के शब्दों में निहित भावनाओं का ज्ञान होता है।

मंत्राराधन में प्रयुक्त होने वाली वाणी मुख-यंत्र की हलचलों से उत्पन्न होने वाली शब्द-श्रृंखला नहीं है। इतने भर से कुछ बड़ा प्रयोजन पूरा नहीं हो सकता। कुछ-न-कुछ अंड-बंड उच्चारण तो जीभ दिन भर करती रहती है। उससे जानकारियों का आदान-प्रदान, विनोद-मनोरंजन जैसे सामान्य कार्य ही बन पड़ते हैं। मंत्रसाधना जिह्वा-संचालन द्वारा कुछ शब्दों की पुनरावृत्ति करने रहने भर से संभव नहीं हो सकती। उसके लिए परिष्कृत वाणी चाहिए, जिसे 'वाक्' कहते हैं। वाक् से शब्दोच्चार के कलेवर का उत्कृष्ट व्यक्तित्व और प्रचंड मनोबल जुड़ा रहता है। गहन श्रद्धा और पवित्र अंतरात्मा के समन्वय की शक्ति ही मंत्र की शब्द-श्रृंखला में प्राण भरती है और उसी के सहारे मंत्र का प्रहार शब्द-वेध की लक्ष्य वेध की भूमिका संपन्न करता है। इसी समन्वय से साधा हुआ शब्द 'ब्रह्म' शक्ति से सुसंपन्न बनाता है।

मंत्र शक्ति की महिमा 'वाक्' शक्ति पर निर्भर है। इस 'वाक्' को स्वर भी कहते हैं, साम भी और सरस्वती भी। यदि इसे शुद्ध एवं सिद्ध कर लिया गया, तो फिर मंत्र के चमत्कार का प्रकट होना सुनिश्चित है। इसी तथ्य को ध्यान में रखते हुए मंत्र से भी बढ़कर

'वाक्' की प्रशंसा की गई है। कारण स्पष्ट है। परिष्कृत वाक् ही मंत्रों की सार्थकता बताता है। भ्रष्ट वाणी से किए हुए मंत्रानुष्ठानों को सफलता कहाँ मिलती है ?

अस्थि वा ऋक्।

—शतपथ ७।५।२।२५

मंत्र तो हड्डियाँ मात्र हैं।

तथ्य को और भी स्पष्ट करते हुए कहा गया है—

वाक् वै विश्व कर्मर्षि वाचाहीदं सर्व कृतम्।

—शतपथ,

वाणी जब उच्चारण-मात्र से ही सब कुछ उत्पन्न और संपन्न करती है, तब वह विश्वकर्मा ऋषि बन जाती है।

स यो वाचं ब्रह्मत्वपास्ते यावद्वाचो गतं तत्रास्य यथा कामचारो भवति। —छंदोग्य

जो वाणी को ब्रह्म समझकर उपासना करता है, उसकी वाणी की गति इच्छित क्षेत्र तक हो जाती है।

सक्तुमिव तितउना पुनन्तो,
यत्र धीरा मनसा वाचमक्रत।
अत्रासखायः सख्यानि जानते,
भद्रैषां लक्ष्मीर्निहिताधि वाचि।।

—ऋग्वेद १०।७१।२

जिस तरह छलनी से सत्तु को शुद्ध करते हैं, उसी तरह जो विद्वान् ज्ञान से वाणी को शुद्ध कर उसका प्रयोग करते हैं, वे लोक से भिन्न होते हैं। भिन्नता का सुख पाते हैं, उनकी वाणी में कल्याणमयी रमणीयता रहती है।

यह 'वाक्' शब्द-शृंखला एवं ध्वनि-प्रवाह भर न होकर साधन के व्यक्तित्व का प्रतिनिधि रहती है। इसलिए किसकी वाणी क्या काम करेगी ? इसका निश्चय करते समय उच्चारणकर्ता के व्यक्तित्व को देखना होता है।

कौषीतकि उपनिषद् में कहा गया है—

न वाचं विजिज्ञासीत्। वक्तारं विद्यात्।

वाणी के उच्चारण को मत देखो। उच्चारणकर्ता के व्यक्तित्व को समझो।

शब्द-विद्या के दो आधार, दो साधन नादयोग और मंत्र-योग के नाम से प्रसिद्ध हैं। दोनों विधि-विधान और कर्मकांड सुविदित, सर्वसुलभ और अभ्यास में अति सरल हैं, किंतु उन्हें बहिरंग आवरण ही समझा जाना चाहिए। इनमें प्राण-संचार जीवन-साधना द्वारा उपार्जित की गई उत्कृष्ट अंतःस्थिति से ही संभव होता है। मस्तिष्क में दुर्बुद्धि, अचिंत्य चिंतन, विकृत विचार-प्रवाह का निराकरण करने से उत्पन्न हुई चित्त की स्थिरता से नादानुसंधान में सफलता मिलती है। व्यावहारिक जीवन में सत्कर्म परायणता, सत्प्रवृत्ति संवर्धन एवं आदर्शवादी चरित्रनिष्ठा से उस वाक्-शक्ति का उदय होता है, जो मंत्रों को लक्ष्य-वेधी वाण की तरह सामर्थ्यवान् बनाती है। साधना-विधियाँ सरल हैं, कठिन तो वह प्रक्रिया है, जिसमें क्रिया, विचारणा और भावना को परिष्कृत-परिमार्जित करने के लिए निरंतर आत्म-संघर्ष करना पड़ता है। शब्द-विद्या का लाभ उठाने के लिए उसके लिए उपयुक्त यंत्र उपकरण अपना परिष्कृत-व्यक्तितत्व ही होता है। शब्द को शब्द-ब्रह्म बना सकना ऐसे ही व्यक्तितत्व-संपन्न साधकों के लिए संभव होता है।

● शब्द-ब्रह्म की साधना वाक्-शक्ति से

शब्द को ब्रह्म कहा गया है। 'शब्द-ब्रह्म'—'नाद-ब्रह्म' शब्दों का उपयोग शास्त्र में अनेक स्थानों पर आया है। यह उक्ति अलंकार नहीं, वरन् यथार्थ है। हाँ, यदि ध्वनि मात्र को यह उपमा दी जायेगी, तो उसे उपहासास्पद समझा जायेगा। जिह्वा स्वर-यंत्र है। वाद्य-यंत्र पर उलटी-सीधी अँगुलि से आघात लगाये जाएँ, तो आवाज भर होगी। क्रमबद्ध, तालबद्ध, राग-रागिनी निकालनी हो, तो उसके लिए

सधे-हाथ एवं प्रशिक्षित-मस्तिष्क का भी योगदान आवश्यक है। जिह्वा से बोले गये मंत्र वाद्य-यंत्र पर जैसे-तैसे अँगुली चलाने की तरह हैं, उतने भर से दीपक-राग या मेघ-मल्हार जैसे प्रभावोत्पादक परिणामों की अपेक्षा नहीं की जा सकती। जिह्वा से उच्चरित शब्द सामान्यतया जानकारियों के आदान-प्रदान का उद्देश्य पूरा करते हैं। एक व्यक्ति शब्द-माध्यम से अपनी अनुभूति एवं जानकारी दूसरे तक पहुँचा सकता है। इसमें भी आवश्यक नहीं कि जिससे जो कहा गया है, वह उसे उसी रूप में स्वीकार कर ले। कारण कि आजकल वचन-छल का दौर-दौरा है। लोग एक-दूसरे को ठगने की दृष्टि से कपट-वचन बोलने की कला में प्रवीण हो चले हैं। अस्तु, सुनने वाले को फूँक-फूँक कर कदम रखना होता है और देखना पड़ता है कि कथन में छल, प्रपंच की दुरभिसंधियाँ तो घुसी हुई नहीं हैं। कितना कथन संदिग्ध हो सकता है, इसकी खोज करने में सुनने वाला लगा रहता है। जितना अंश गले उतरता है, उतने पर ध्यान देकर शेष को फेंक देता है। जब सामान्य व्यवहार तक में वाणी की यह दुर्गति हो रही हो, उच्चारण को अविश्वस्त और अप्रमाणिक मानने की परंपरा चल रही हो, तो उससे व्यावहारिक आदान-प्रदान तक की आवश्यकताएँ पूरी नहीं होतीं। फिर आध्यात्मिक प्रयोजन तो पूरे हो ही कैसे सकेंगे ?

इस कठिनाई को ध्यान में रखते हुए मंत्राराधन में 'वाणी' मात्र से संभव हो सकने वाले क्रिया-कांडों को महत्त्व नहीं दिया गया है। जीभ से तो लोग आये दिन कला, कीर्तन, भजन, पाठ, जप आदि के माध्यम से तरह-तरह के चित्र-विचित्र वचन बोलते रहते हैं। यदि उतने भर से धर्मचर्या के उद्देश्य पूरे हो जाया करते, तो फिर सरलता की अति ही कही जाती। छोटे-छोटे लाभ प्राप्त करने के लिए मनुष्य को कठोर श्रम करने, साधन जुटाने एवं मनोयोग लगाने की आवश्यकता पड़ती है, तब कहीं आधी-अधूरी सफलता का योग बनता है। अध्यात्म-क्षेत्र जितना उच्चस्तरीय है उतनी ही उसकी विभूतियाँ भी बहुमूल्य हैं। निश्चित रूप से उसके लिए प्रयास भी अपेक्षाकृत अधिक कष्ट-साध्य ही होते हैं। यदि उतने बड़े लाभ

मात्र जिह्वा से अमुक शब्दावली दुहरा देने भर से प्राप्त हो जाया करते, तो उन्हें पाने से कोई भी वंचित न रहता, पर इतना सस्तापन है कहाँ ?

महत्त्व की दृष्टि से हर वस्तु का मूल्य निर्धारित है। अध्यात्म उपलब्धियों में शब्द शक्ति की महत्ता बताई और महिमा गाई गई है। मंत्राराधन के फलस्वरूप मिलने वाले लाभों का वर्णन विस्तारपूर्वक शास्त्रों में भरा पड़ा है, पर उसे शब्द का चमत्कार भर नहीं मान लिया जाना चाहिए। यदि उच्चारण ही सब कुछ रहा होता, तो साधन-ग्रंथ पढ़ने वालों से प्रेस कर्मचारी और पुस्तक विक्रेता पहले लाभान्वित हो लेते। पाठक को उनका बचा-खुचा ही शायद कुछ हाथ लगता। शब्दोच्चारण में जप के अति सरल कर्मकांड के लिए थोड़ा-सा समय लगा देने में किसी को क्या कुछ असुविधा होगी ? उतना तो कोई बालक-नासमझ या वृद्ध और अशक्त भी कर सकता है, फिर समर्थ व्यक्ति तो उसे उत्साहपूर्वक करते और भरपूर लाभ उठाते। ऐसा कहाँ होता है ? लाभों का माहात्म्य-विस्तार पढ़ते हुए भी कुछ करने के लिए कहाँ किसी को उत्साह होता है ?

'शब्द-ब्रह्म' शब्द में जो गहन रहस्य छिपा है, वह यह है कि अध्यात्म-प्रयोजनों में प्रयुक्त होने वाली शब्दावली को उच्चस्तरीय होना चाहिए। वह इतनी परिष्कृत हो कि उसकी पवित्रता, प्रामाणिकता एवं क्षमता को ईश्वर के समतुल्य ठहराया जा सके। इसके लिए कई लोग स्वर-विन्यास की बात सोचते हैं और अनुमान लगाते हैं कि मंत्रों में उच्चारण का जो स्वर-क्रम बताया गया है, उसे जान लेने से काम बन जायेगा। यह मान्यता भी तथ्य की दिशा में एक छोटा कदम भर ही है। इस चिंतन में इतनी-सी ही जानकारी है कि हमारे क्रिया-कृत्यों को अनगढ़ नहीं, सुव्यवस्थित होना चाहिए। भले ही वह उच्चारण ही क्यों न हो ? वाणी को शिष्टाचार-संतुलन सभ्यता का अंग माना जाता है। जो ऐसे ही अंड-बंड बोलते रहते हैं, असभ्य कहलाते और तिरस्कार के पात्र बनते हैं। ऐसी दशा में मंत्र-प्रयोजनों में यदि उनके साथ जुड़े हुए

व्यवस्था नियमों का पालन किए जाने का निर्देश है, तो उसका पालन होना ही चाहिए। इसमें सतर्कता एवं जागरूकता अपनाए जाने की बात दृष्टिगोचर होती है। यह दिशा उत्साहवर्धक है। इसमें प्रमाद पर अंकुश लगने और व्यवस्था अपनाने में उत्साह उत्पन्न होने का बोध होता है, यह उचित भी है और आशाजनक भी।

मंत्रों का उच्चारण शुद्ध हो। सही हो। गति का ध्यान रहे। स्वर, लय, क्रम, विराम आदि को जाना-माना जाए। यह अनगढ़पन से मंत्राचार की सभ्यता में प्रवेश करने का कदम है। पूजा, उपचार के अन्य कर्मकांडों में भी यह सतर्कता बरतनी चाहिए। आलसी-प्रमादियों की तरह आधी-अधूरी चिह्न पूजा करने की बेगार भुगत लेने से तो अश्रद्धा ही टपकती है। अन्यमनस्कता एदं उपेक्षापूर्वक किए गए नित्य-कर्म तक बेतुके-बेढंगे होते हैं, इस स्वभाव से तो आजीविका उपार्जन जैसे काम तक असफल जैसे बने रहते हैं, फिर अध्यात्म मार्ग की उपलब्धियों में तो इसका परिणाम अवरोध उत्पन्न करने के अतिरिक्त और कुछ हो ही क्या सकता है ?

उच्चारण से लेकर विधि-विधान तक में सुव्यवस्था एवं सतर्कता बरती जानी चाहिए, किंतु इतने भर से ही यह नहीं मान लेना चाहिए कि हमारे उच्चारण 'मंत्र' बन गये और उन्हें शब्द-ब्रह्म या नाद-ब्रह्म की संज्ञा मिल गई। इसके लिए वाणी को 'वाक्' के रूप में परिष्कृत करना होगा। यह स्वर-साधना नहीं वरन् जीवन-साधना के क्षेत्र में होने वाला प्रयोग है। इसके लिए समूचे व्यक्तित्व को मन, वचन, कर्म को—गुण, कर्म, स्वभाव को—चित्त एवं चरित्र को उच्चस्तरीय बनाने के भागीरथ प्रयत्न में जुटाना होता है। मंत्रोच्चारण की विधि-व्यवस्था कुछ घंटों में सीखी जा सकती है, उसका परिपूर्ण अभ्यास कुछ दिनों में हो सकता है; किंतु व्यक्तित्व की मूल-सत्ता का स्तर ऊँचा उठाना काफी कठिन है। उसके लिए प्रबल-पुरुषार्थ की आवश्यकता पड़ती है। दूसरों को सुधारने में जितनी कठिनाई पड़ती है, अपने को सुधारना उससे भी अधिक कष्ट साध्य और श्रमसाध्य है।

जिह्वा उच्चारण तंत्र है। अन्य वाद्य-यंत्रों की तरह उसका सही होना तो प्राथमिक आवश्यकता है। मंत्र की शब्दावली शुद्ध हो। भाषा की अशुद्धियाँ न हों। प्रवाह एवं स्वर ठीक हो। इसके अतिरिक्त जिह्वा साधनों की दृष्टि से सामान्य व्यवहार के उसके रसना-प्रयोजन एवं वार्ता-क्रम में साधकों जैसी रीति-नीति का समावेश किया जाए। अनीति की, हराम की कमाई न खाई जाए। परिश्रम और न्याय के सहारे जितना कुछ कमाया जा सके, उतने में ही मितव्ययितापूर्वक गुजारा किया जाए। चटोरेपन की बुरी आदत से लड़ा जाए और सात्त्विक सुपाच्य पदार्थों को औषधि भाव से उतनी ही मात्रा में लिया जाए जितनी कि पेट की आवश्यकता एवं क्षमता है। इस दृष्टिकोण को अपनाने वाले के लिए मद्य, मांस जैसी अभक्ष्यों को ग्रहण करने की तो बात ही क्या—उत्तेजक मसाले और नशीले पदार्थों—मिष्ठान्न, पकवानों तक से परहेज करने की जरूरत पड़ती है। अन्न का मन पर प्रभाव पड़ने की बात स्पष्ट है। सात्त्विक आहार से मनः क्षेत्र में सात्त्विकता बढ़ती है और उससे अनेक दोष-दुर्गुण जो अभक्ष्य खाते रहने पर छूट नहीं सकते थे, अनायास ही घटते-मिटते चले जाते हैं। अस्वाद-व्रत पालन करने वाले के लिए अन्य इंद्रियों पर काबू रख सकना सरल हो जाता है।

आहार की सात्त्विकता का वाणी की पवित्रता पर गहरा असर पड़ता है। अभक्ष्य आहार से जिह्वा की सूक्ष्म शक्ति नष्ट होती है और उसके द्वारा उच्चारित शब्द आध्यात्मिक प्रयोजन पूरे कर सकने की क्षमता से रहित ही बने रहते हैं। वाणी का दूसरा कार्य है—वार्त्तालाप। हमारे दैनिक जीवन में वार्त्तालाप का स्तर उच्चस्तरीय एवं आदर्श परंपराओं से युक्त होना चाहिए। कटुता, घृणा, तिरस्कार, छल, असत्य का पुट उसमें न रहे। दूसरों को भ्रम में डालने, कुमार्ग पर चलने की प्रेरणा देने वाले, हिम्मत तोड़ने वाले शब्द न बोलें। यह नियंत्रण मात्र सतर्कता बरतने से नहीं हो सकता। उपचार में भी बार-बार भूल होती रहती है। वस्तुतः हमारे भीतर सद्भावों का इतना गहरा पुट हो कि वाणी पर नियंत्रण करने की आवश्यकता ही न पड़े। जो भीतर होता है वही बाहर

निकलता है। यदि हमारे अंतःकरण में सद्भावनाएँ भरी होंगी—दृष्टिकोण आदर्शवादी होगा, तो स्वभावतः वार्त्तालाप में उच्चस्तरीय श्रेष्ठता भरी होगी। सद्भावसंपन्न मनुष्यों का सामान्य वार्त्तालाप भी शास्त्र वचन के स्तर का होता है, उनके मुख से निकलने वाले वाक्य 'आप्त वाक्य' कहलाने योग्य होते हैं। इस प्रकार का वार्ता-अभ्यास जिह्वा को दैवी प्रयोजनोंके उपयुक्त बनाता चला जाता है। उसके द्वारा जिन मंत्रों की आराधना की जाती है, वे सफल ही होते चले जाते हैं।

मंत्र को धीमे जपा जाता है। शब्दावली अस्पष्ट एवं धीमी रहती है। बहुत बार तो वाचिक से भी अधिक महत्त्व मानसिक और उपांशु जप का होता है। उनमें तो वाणी नाम मात्र को ही होती है, किंतु इन मौन जपों में भी मध्यमा, परा, पश्यंती वाणियाँ काम करती रहती हैं। यह तीनों वाणियाँ मनुष्य के दृष्टिकोण, चरित्र एवं आकांक्षा से संबंधित रहती हैं। यदि व्यक्ति ओछा, घटिया और दुष्ट है। उसकी आकांक्षाएँ निकृष्ट, दृष्टिकोण विकृत एवं चरित्र भ्रष्ट है, तो तीनों सूक्ष्म वाणियाँ निम्नस्तरीय ही बनी रहेंगी और उनका समन्वय रहने में बैखरी वाणी तक प्रभावहीन, संदिग्ध एवं अप्रामाणिक बनी रहेगी, उसका सांसारिक उपयोग भी कोई महत्त्वपूर्ण परिणाम उत्पन्न न कर सकेगा, फिर उसके द्वारा की गई मंत्र-साधना तो सफल हो ही कैसे सकती है ?

मंत्र-जप की सरल विधि के साथ कठिन साधना यह है कि उसके लिए जिह्वा समेत समस्त उपकरणों का परिशोधन करना पड़ता है। जो तथ्य को समझते हैं, वे साधनाओं के विधि-विधान तक सीमित न रहकर जीवन-प्रक्रिया को उच्चस्तरीय बनाने की सुविस्तृत रूपरेखा तैयार करते हैं। उस प्रयास में जिसे जितनी सफलता मिलेगी, उसके जप-तप उसी अनुपात में सफल होते देखे जा सकेंगे। शब्द-ब्रह्म का साक्षात्कार इसी मार्ग पर चलने से संभव होता है। समूची आत्मसत्ता को परिष्कृत बनाने से वाणी की परिणति 'वाक्-शक्ति' में होती है। वाक्-शक्ति का

प्रभाव असीम है। उसकी सहायता से असंभव को भी संभव किया जा सकता है।

शतपथ ब्राह्मण में शब्द-ब्रह्म का विवेचन करते हुए कहा गया है—परावाक् उसका मर्मस्थल है। परावाक् का रहस्योद्घाटन करते हुए बताया है—वह हृदयस्पर्शी है, प्रसुप्त को जगाती है। स्वर्ग, मुक्ति और सिद्धि का आधार वही है। देवताओं के अनुग्रह-वरदान का केंद्र उसी में है। इस विश्व में जो कुछ श्रेष्ठता है, वह वाक् की प्रतिध्वनि एवं प्रतिक्रिया ही समझी जानी चाहिए।

वैखरी-वाणी जब साधना संपन्न होकर 'वाक्' बनती है, तो उसका विस्तार श्रवण क्षेत्र तक सीमित न रहकर तीनों लोकों की परिधि तक व्यापक होता है। वाणी में ध्वनि है, ध्वनि में अर्थ; किंतु 'वाक्' शक्तिरूपा है। उसकी क्षमता का उपयोग करने पर वह सब जीता जा सकता है, जो जीतने योग्य है।

कौत्स मुनि ने मंत्र अक्षरों के अर्थ की उपेक्षा की है और कहा है कि उसकी क्षमता शब्द-गुंथन के आधार पर समझी जानी चाहिए। उसमें 'वाक्' तत्त्व ही प्रधान रूप से काम करता है। इस 'परावाक्' का स्तवन करते हुए श्रुति कहती हैं—

देवीं वाचमजनयन्त देवास्तां,
विश्वरूपाः पशवो वदन्ति।
सा नो मंद्रेषमूर्जं दुहाना,
धेनुर्वागस्मानुपसुष्टुतैतु ।।

—देव्यूपनिषद्- ५

परा वाक् देवी है। विश्व-रूपिणी है। देवताओं की जननी है। देवता मंत्रात्मक ही हैं। यही विज्ञान है। इस कामधेनु 'वाक्' की शक्ति से हम जीवित हैं। उसी के कारण हम बोलते और जानते हैं।

● संगीत के दुरुपयोग की निंदा-भर्त्सना

स्वरयोग की साधना—शब्दब्रह्म का अभ्यास वस्तुतः एक साधना है, जिसका अवलंब लेकर मनुष्य अपने भीतर के 'सुंदर' को

ही नहीं, 'शिव' और 'सत्य' को भी उल्लसित कर सकता है और उस आंतरिक तृष्णा की तृप्ति कर सकता है, जिसकी लालसा से उसे विविध विधि कामनाएँ और प्रवृत्तियाँ अपनानी पड़ती हैं। 'संगीत' के योगसूत्र में यही स्पष्ट किया गया है कि योग-साधना के अनेक प्रकारों में नादयोग की स्वरसाधना का भी महत्त्वपूर्ण स्थान है।

गीता में भगवान् ने अपने को वेदों में सामवेद बताया है।

'वेदानां सामवेदोऽस्मि।'

सामवेद में भी संगीत ही है, पर उसमें पवित्र उद्देश्य और आदर्शों का समावेश है, इसलिए उस स्वर लहरी को वंदनीय और उपयोगी कहा गया है।

सामवेदः स्मृत पित्र्यस्तस्मात् तस्याशुचिर्ध्वनिः।

—मनु० ४।१२४

रुद्रः साममयोऽन्तेच तस्यात्तस्याशुचिर्ध्वनिः।

—मार्कंडेय पुराण १०२।१०६

चिर अतीत में मनीषियों ने उसका विकास, विस्तार इस दृष्टि से किया था। लय और ताल का समन्वय करके वाद्य-यंत्रों को नहीं, अंतरंग की स्वरवीणा को झंकृत करने का उपक्रम किया गया था। संगीत किसी समय भगवदोपासना का ही एक माध्यम था। सुनाने वालों में वह आत्मोल्लास जगाता था और उसे 'कुत्सा' से ऊँचा उठाकर 'भूमा' में प्रतिष्ठित करता था। अपनी इसी विशेषता के कारण वह लोक श्रद्धा का माध्यम रहा। संतों ने उसे प्राणप्रिय माना और उसके संहारे लक्ष्य पूर्ति की दिशा में सफल प्रयाण किया। इसमें इनका ही नहीं वरन् सुनने वालों का भी आत्मोत्कर्ष जुड़ा हुआ रहता था। साम गान के दिव्यदर्शियों से लेकर देवर्षि-नारद तक और अंततः वह पवित्रधारा अनेक संत-साधकों में प्रवाहित होती हुई हरिदास एवं तानसेन तक चली आई। यह प्रवाह यथाक्रम चलता रहता है और अपना स्तर यथास्थान बनाए रहता, तो

उससे—भावनात्मक महानता की स्थिति उत्कृष्ट स्थिति में ही बनी रहती।

दुर्भाग्य ही कहना चाहिए कि पतन के सर्वभक्षी आक्रमण से संगीत भी बच नहीं सका। वह योगाभ्यास से नीचे उतरा और कला बना। इससे भी नीचे गिरा तो नटविद्या-मात्र बनकर रह गया। आज वह इसी दयनीय दुर्दशा की स्थिति में पड़ा है।

संगीत को कला इसलिए बनना पड़ा कि वह लोकरुचि के पीछे चलकर आजीविका और प्रशंसा का माध्यम बन सके। यहाँ तक भी गनीमत थी। अन्य व्यवसायों की तरह ही संगीत भी किन्हीं पेशेवरों का पेशा रहे, तो उन्हें व्यावहारिक जीवन की एक आवश्यकता मानकर गायक-वादकों को साधक तो नहीं, पर श्रमजीवी कहा जा सकता था। दुःखद स्थिति तब उत्पन्न हुई जब वह साधना तो दूर कला भी न रही और कुत्साओं के हाथ का खिलौना बनकर व्यसनी और व्यभिचारियों की तुष्टि-पुष्टि के काम आने वाला एक नशा भर बनकर रह गया। सामंतों और अमीरों की पशु-प्रवृत्ति को अधिकाधिक उत्तेजित करने और 'पशु' को अधिकाधिक उग्र बनाने भर के लिए जब उसने अपनी आत्मा को बेच दिया, तो उस तत्त्वदर्शी की आत्मा बिलख-बिलख कर रोई होगी, जिसने स्वर विज्ञान द्वारा नर को नारायण बनाने के सपने देखे होंगे।

महाभारत के बाद एक ऐसा युग आया, जिसमें राष्ट्र को दीर्घकाल तक पराधीन रहना पड़ा। पराधीनता की बेड़ियों में जकड़ा राष्ट्र भौतिक अत्याचारों से पीड़ित तो हुआ ही, उसके सांस्कृतिक मूल्यों पर भी गहरा कुठाराघात हुआ। जहाँ एक ओर आतताइयों ने अपने आतंक द्वारा धन-संपत्ति का शोषण किया, वहीं जीवन के प्रत्येक क्षेत्र को प्रभावित किया। धर्म, संस्कृति, सभ्यता, कला, संगीत, कोई भी क्षेत्र ऐसा नहीं रहा, जिस पर प्रहार करने का प्रयास न किया गया हो। परतंत्रता न केवल वाह्य गतिविधियों, चेष्टाओं की स्वतंत्रता पर रोक लगाती, अपितु

स्वतंत्र चिंतन एवं विचारों को भी प्रभावित करती है। मौलिक एवं स्वतंत्र चिंतन के अभाव में कोई भी राष्ट्र अपने सांस्कृतिक मूल्यों को स्थिर बनाये रखने में समर्थ सिद्ध नहीं होता है। फलस्वरूप स्वतंत्र चिंतन के प्रवाह के अवरुद्ध होने से बाह्य विचार हावी होने लगते हैं।

हमारी संगीत-कला के क्षेत्र में भी यही हुआ, सामंतों-शासकों ने इस सशक्त माध्यम का उपयोग व्यक्तिगत क्षुद्र हास-परिहास के लिए किया। पैसे के द्वारा कला को क्रय किया जाने लगा। कमजोर एवं लचीले मनोभूमि के संगीतज्ञों ने राजाओं, शासकों के हाथ अपनी कला को बेच दिया। राजाओं के गुणगान, सौंदर्य-अभिव्यक्ति, वासनात्मक अभिरुचियों को बढ़ाने में संगीत की तान थिरकने लगी। कितने ही कला के साधकों ने अपनी आराधना को विक्रय करने से इनकार किया, उनके ऊपर अत्याचार किया जाने लगा। आतंक एवं दबाव में अनेकों को अपनी कला को महलों में कैद होने के लिए बाध्य किया। जिन्होंने इनकार किया, उनका अस्तित्व समाप्त कर दिया गया। इस तरह महान् संगीत साधना एक व्यवसाय बन गयी। जो कभी स्वांतः सुखाय से अभिप्रेरित, लोकरंजन और परमार्थ-साधना का अंग थी, वह निम्न प्रवृत्तियों, वासनाओं को भड़काने की एक माध्यम बनकर रह गयी। मध्यकालीन इतिहास पर दृष्टिपात करने पर पता चलता है कि, अपवादों को छोड़कर अधिकांशतः ने अपनी साधना का राजा-शासकों के गुणानुवाद, चापलूसी के लिए दुरुपयोग किया। इतिहास में नादयोग के माध्यम संगीत का पतन यहाँ से होता है।

अपवाद स्वरूप कुछ साधक ऐसे भी थे, जिन्होंने अपनी साधना को इन तुच्छ प्रवृत्तियों के लिए घुटने नहीं टेके। इन साधकों को महापुरुष के रूप में इतिहास सदा याद करेगा, सूर, तुलसी, कबीर, मीरा के उद्‌गारों ने न केवल तत्कालीन संस्कृति

को पतन के गर्त में गिराने से बचाया, अपितु उनके योगदान युग-युग तक प्रेरणा देते रहेंगे। 'सूरदास' के गुरु श्री बल्लभाचार्य का नाम भी इन महापुरुषों की श्रेणी में आता है। श्रीकृष्ण की भक्ति में अपनी संगीत की लहरी द्वारा जो लय छेड़ी, उससे प्रभावित होकर 'सूरदास' जैसे 'भक्तिरस' के मूर्तिमान् स्वरूप निकल पड़े।

तत्कालीन स्वर-साधकों में तानसेन एवं 'बैजू बावरा' को भी विशेष ख्याति मिली। तानसेन के स्वर में आकर्षण तो था; किंतु 'परान्तः सुखाय' के लिए उसकी कला का उपयोग होने के कारण किसी को प्रेरणा देने में असमर्थ थी। कहा जाता है कि एक बार 'अकबर' ने तानसेन से उनके 'गुरु 'हरिदास' का संगीत सुनने की इच्छा प्रकट की, किंतु हरिदास ने अकबर को अपना संगीत सुनाने से इनकार कर दिया। अकबर ने उनका संगीत सुनने का दूसरा रास्ता अपनाया, लुक-छिपकर जब 'हरिदास' संगीत-साधना में डूबे थे, उनके प्रभावशाली संगीत को सुना। सम्राट् ने अपने जीवन में इतना आकर्षक स्वर कभी नहीं सुना था। तानसेन से उन्होंने पूछा कि—'तुम्हारे गुरु के स्वर में तुम से भी अधिक प्रभाव एवं आकर्षण क्यों हैं ?'

तानसेन ने उत्तर दिया महाराज ! "मेरी संगीत साधना 'स्वांतः सुखाय' के लिए होती है, जबकि हमारे गुरुदेव उससे परमात्मा की स्तुति गाते हैं। अंतर का कारण यही है।

इस तरह मध्य-कालीन युग संगीत कला की अवनति का युग बना और तब से निरंतर उसका स्वरूप अधोगामी बना रहा। आज तो क्या गायक, क्या वादक— सरस्वती के उपासक लक्ष्मी के क्रीतदास बन गये हैं ? मुट्ठी भर लोगों ने जीवन के नितांत संवेदनशील औंर गोपनीय पक्ष को मानवीय दुर्बलता के रूप में पहचाना और उसे अर्थ-दोहन का माध्यम बना लिया। इसे समाज का बौद्धिक दिवालियापन और तथाकथित कलाकारों की ब्लैक मेल ही कहना चाहिए, कि इन दिनों सिनेमा जैसी कैद में वह पात्र

काम-क्षुधा भड़काने का माध्यम बन गया है। यह मध्य युग से उत्तरोत्तर पतन-क्रम है।

अपने समाज में भगवद्-भक्ति का भावोद्दीपन मनुष्य के देवत्व के जागरण का अविच्छिन्न अवलंबन माना जाता रहा है। तदनुसार संतों, ब्राह्मणों, मनीषियों, धर्मोपदेशकों को भूसुर कहकर उनकी चरण-धूलि मस्तक पर चढ़ाने की परंपरा रही है। संगीतकार इसी पंक्ति में बैठता था, उसकी गणना इसी वर्ग में की जाती थी। स्वर-साधक को योगसाधकों के बीच ही माना जाता था, उसे वैसी ही श्रद्धा प्रदान की जाती थी। कहना न होगा कि, कभी किसी श्रद्धास्पद को रोजी-रोटी की शिकायत नहीं करनी पड़ी। रोटी की चिंता ने उन्हीं को खाया है, जो आत्म विस्मरण के गर्त में गिर चुके। रोटी के नाम पर दौलत की हविस उन्हें सताती है, जिन्होंने आंतरिक गरिमा का विसर्जन करके विलासिताओं, लिप्साओं और अहंता की भौतिक-तृप्ति के लिए व्याकुल रहने की दुष्प्रवृत्ति अपना ली। कोई भी क्यों न हो—भले ही वह संगीतकार ही क्यों न हो, इस स्तर पर उतरेगा तो वह अपना ही नहीं-अपने संपर्क में आने वालों को भी पतन के गर्त में धकेलेगा। संगीत के पतन का वह आरंभ बढ़ते-बढ़ते आज इस सीमा तक पहुँच गया है कि इन दिनों कामुकता भड़काने वाली दुष्प्रवृत्ति का ही दूसरा नाम संगीत बन गया है। स्वर-साधना अब कला भी नहीं रही, वह नटिनी, नर्तकी, गायकी, वेश्या, हरजाई है। उसका तन अब हर कोठे पर किसी भी कोठी के आगे समर्पित होने के लिए सजा बैठा है। संत-परंपरा सामंतों के आश्रय में विकृत हुई, तो अब वह कुत्साएँ भड़काने वाली विडंबना मात्र रह गई है। धन-वैभव तो वेश्याएँ भी कमाती हैं, तालियाँ बजने और वाहवाही सुनने का लाभ तो नग्निकाओं और विष-कन्याओं को भी मिल जाता है, ऐसी ही प्रशंसा यदि आधुनिक गीत-वाद्य की कला को मिले, तो उसे नियति का क्रूर व्यंग्य ही समझा जाना चाहिए। संगीत में सम्मोहन है। इसे ऋषियों के हाथ में ही रहना चाहिए। कुत्साओं की खिलवाड़ के लिए उसका प्रयुक्त किया जाना जन-जीवन को विष पान ही करा सकता है। जंगली

जन्तुओं का वध करने के लिए अहेरी और सपेरे भी संगीत का प्रयोग करते हैं। हिरनों को, साँपों को पकड़ने के लिए भी संगीत सम्मोहन का प्रयोग होता है, पर वह न शुभ है न श्रेयस्कर। शालीनता की दृष्टि से यह उचित नहीं कहा जा सकता कि संगीत जैसे शब्द-योग को दौलत अथवा वाहवाही लूटने के प्रलोभन में लोक-मानस का विनाश करने में प्रयोग किया जाए।

कामुकता एवं कुत्सा भड़काने जैसे दुष्ट प्रयोजनों के लिए प्रयुक्त किया गया स्वर कितना अहितकर होता है ? इसकी एक कथा शतपथ ब्राह्मण में इस प्रकार आती है—'त्वष्टा ऋषि ने ऋचा का उच्चारण करने में भूल की, उसका अवांछनीय रीति से दुरुपयोग किया। इसका फल बड़ा विपरीत निकला। त्वष्टा ने जिस प्रयोजन के लिए उच्चारण किया था, वह तो पूरा न हुआ वरन् वृत्रासुर नामक एक देवघाती विकट महादैत्य उपज कर खड़ा हो गया और उसने भयंकर विभीषिकाएँ उत्पन्न कर दीं।' आज ऐसे ही संगीत के दुरुपयोग ने समाज में अवांछनीय परिस्थितियाँ उत्पन्न की हैं।

जब कुत्साओं का पर्यायवाची संगीत बन गया, तो विज्ञ-समाज में उसकी सर्वत्र भर्त्सना की जाने लगी। औरंगजेब ने एक बार अपने राज्य में से वाद्य-यंत्रों का जनाजा निकालकर उन्हें कब्रिस्तान में दफना देने का आदेश दिया था और संगीतकारों को जन-मानस को विलासी एवं पतनोन्मुख बनाने का अपराधी घोषित करके उन्हें देश निकाले की सजा दी थी।

पतनोन्मुख वासना-प्रिय विलासी संगीत को भारतीय धर्म-ग्रंथों में भी घृणित, त्याज्य एवं गर्हित घोषित किया है और इस प्रकार के विष-मिश्रित दूध को पीने से बचने के लिए ही सर्वसाधारण को निर्देश दिया है। ऐसे अनेक अभिवचन यत्र-तत्र भरे पड़े हैं।

संभ्रांत विज्ञ व्यक्तियों को भगवान् मनु ने संगीत व्यसन से दूर रहने का परामर्श दिया है।

कामं क्रोधं च लोभं च नर्तनं गीतवादनम्।

—मनु० २।१७८

न नृत्येदथवा गायेन्न वादित्राणि वादयेत्।

—मनु० ४।६४

इन अभिवचनों से काम, क्रोध, लोभ जैसे दुर्गुणों की पंक्ति में ही गीत-नृत्य की गणना की गई है और उनसे बचने की शिक्षा दी गई है।

आगे चलकर उन्होंने संगीतजीवी व्यक्ति को अनाचारी, अधम, गर्हित बताते हुए कहा है कि, न तो उनके साथ पंक्ति में बैठकर भोजन करें और न उनका अन्न-जल ही ग्रहण करें। उन्हें ब्राह्मण होने पर भी शूद्रवत् समझें। यह अभिप्राय व्यक्त करने वाले मनुस्मृति में निम्न श्लोक हैं—

कुशीलवोऽवकीर्णी च वृषलीपतिरवे च।
एतान् विगर्हिताचारानपांक्तेयान्द्विजाधमान्।
द्विजातिप्रवरो विद्वानुभयत्रं विवर्जयेत्।

—मनु० ३।१५५,१६७

स्तेन गायन योश्चान्नं तक्ष्णो वार्धुषिकस्य च।

—मनु० ४।२१०

प्रेष्यान् वार्धुषिकांश्चैव विप्रांशूद्रवदाचरेत्। ८।१०२

ब्राह्मणो नैव गायेन्न नृत्येत् —गोपथ २।२१

ब्राह्मण ना तो गाये और न नाचे।

मनुस्मृति में नृत्य-गान वाद्य को 'तौर्यत्रिक' संज्ञा देते हुए उसे त्याज्य कामज व्यसन कहा गया है।

तौर्यत्रिकं वृथाट्या च कामजो दशको गणः।

—मनु० ७।४७

व्यसनानि दुरन्तानि प्रयत्नेन विवर्जयेत्।

—मनु० ७।४५

इन दोनों ही निर्देशों में संगीत की भर्त्सना की गई है और उससे बचने के लिए कहा गया है।

वाल्मीकि रामायण में रावण की स्त्रियों के अनेक दूषणों में से एक यह भी गिनाया है कि वे संगीत परायण थीं।

नृत्य वादित्रकुशला राक्षसेंद्रभुजांगाः।

—बा. रा. सुंदरकांड १०।३२

काचिद् वीणां परिष्वज्य प्रसुप्ता सम्प्रकाशते।

—१०।३७

अन्या कक्षगतेनैव मड्डुकेनासितेक्षणा।

—१०।३८

विपंचीं परिगह्यान्या नियता नृत्यशालिनी।

इन सभी विवरणों में राक्षसियों को नाचने, गाने वाली, अनेक प्रकार के वाद्य-यंत्रों को साथ लटकाए रहने वाली, उन्हें साथ लेकर सोने वाली बताया गया है।

एक ओर असुर ललनाओं की इस कामज-संगीत-व्यसन से ग्रस्त स्थिति का वर्णन है। दूसरी ओर भगवान् राम भरत जी को अयोध्याकांड १००।६८ में संगीत व्यसन से सर्वथा दूर रहने का उपदेश देते हैं।

गायक वादकैश्चानर्थ्यैः संयोगः कामः

—कौटिल्य अर्थशास्त्र ८।१।४

अर्थात् गायन, वादन कामोत्तेजक और अनर्थमूलक हैं।

उपरोक्त अभिवचनों में केवल कुत्सित संगीत की वासना भड़काने में संलग्न कुरुचिपूर्ण संगीतकारों की ही भर्त्सना की गई है। सत्संगीत पर इस प्रकार के आक्षेप नहीं हैं। वह तो जन जीवन में भावनात्मक उत्कर्ष का ही पथ प्रशस्त कर सकता है। संसार भर के मनीषियों ने सदुद्देश्य के लिए प्रयुक्त होने वाले संगीत की महत्ता और आवश्यकता का एक स्वर से प्रतिपादन किया है। इस प्रकार के अभिवचनों में से कुछ इस प्रकार हैं—

संगीत से आत्मा की मलीनता धुलती है।

—आवेर वेच

गहराई में उतरो, तुम्हें हर पदार्थ के अंतरंग में एक दिव्य-संगीत उभरता दिखाई देगा। —कार्लाईल

संगीत आत्मा के ताप को शांत कर सकता है।

—महात्मा गांधी

संगीत में क्रूर हृदय को भी कोमल बनाने वाला जादू भरा पड़ा है। —जेम्स वाटसन

कितने ही महामानवों ने संगीत के संबंध में अपना अभिप्राय इस प्रकार व्यक्त किया है—

संगीत मानव की विश्व भाषा है। —लांग फैलो

संगीत के पीछे-पीछे खुदा चलता है। —शेखसादी

संगीत टूटे हुए हृदय की औषधि है। —ए. हंट

संसार मुझसे चित्रों में बात करता है, मेरी आत्मा उसका उत्तर संगीत में देती है। —रवींद्रनाथ

संगीत अपने मूल उद्देश्य को पूरा कर सके, अपने सनातन स्वरूप को स्थिर रख सके, इसके लिए हमें पूरा प्रयत्न करना चाहिए और उसे सदुद्देश्य के लिए प्रयुक्त होने देना चाहिए।

महात्मा गांधी के संस्मरणों पर प्रकाश डालने वाली 'मनु' बहिन की डायरी में एक स्थान पर बापू का वह कथन छपा है, जिसमें उन्होंने कहा था—"नृत्य" कला के प्रति मेरे मन में आदर है, संगीत मुझे बहुत प्रिय है। लेकिन जिन गीत-वाद्यों ने लोगों के मन विकृत कर दिए हैं उन पर तो रोक लगाऊँगा ही।"

दूध में मक्खी पड़ जाने पर वह अभक्ष्य बन जाता है। संगीत भी तभी तक ग्राह्य है, जब तक उसके साथ सदाशयता जुड़ी हुई है। यदि वह पशु-प्रवृत्तियों को भड़काता है—नीति सदाचार और मर्यादा पालन पर हमला करता है, तो उसकी विषाक्तता अग्राह्य ही होगी। तब ऐसे लक्ष्य-भ्रष्ट संगीत का बहिष्कार ही करना पडेगा।

संगीत एक शक्ति है, इसलिए जहाँ उसका उपयोग है, वहाँ दुरुपयोग भी संभव है। आजकल संगीत के नाम पर अश्लीलता और भोंड़ापन बढ़ा है, उसे अच्छे सुमधुर और शास्त्रीय-संगीत से स्थानापन्न करना और उसका लाभ उठाना बहुत आवश्यक हो गया है।

ध्वनि एक वैज्ञानिक शक्ति है। एक पौराणिक कथा है कि 'त्वष्टा ऋषि से मंत्रोच्चारण में एक स्वर की गलती हुई थी और उसका परिणाम विपरीत हो गया था। त्वष्टा इंद्र को मारने वाला पुत्र उत्पन्न करना चाहते थे, किंतु स्वर-संबंधी उच्चारण की त्रुटि से जिसे इंद्र ने ही मार डाला, ऐसा वृत्त नामक महाअसुर उत्पन्न हो गया। स्वर लहरियों की शक्तियाँ असाधारण हैं, उनका दुरुपयोग करके जनमानस और समाज को दिग्भ्रांत किया जा सकता है और लोगों को कल्याण की दिशा में भी अग्रसर किया जा सकता है। हमें चाहिए कि स्वयं भी संगीत-शक्ति का लाभ प्राप्त करें और समाज को भी उस पुण्य-धारा में स्नान का सुख प्रदान करें।

□ □

मुद्रक : युग निर्माण योजना प्रेस, मथुरा (उ. प्र.)